जेएनयू प्रकरण पार्ट – 2

खुलने लगी परतें

Dr. Syama Prasad Mookerjee Research Foundation

जेएनयू प्रकरण पार्ट–2
खुलने लगी परतें

संकलनकर्ता
शिवानन्द द्विवेदी

Cover Design & Layout
Vikas Saini

डॉ. श्यामा प्रसाद मुकर्जी
रिसर्च फाउंडेशन

अनुक्रमणिका

क्र.सं	लेख	पेज न.
01	प्राक्कथन	5
02	राष्ट्रवाद की हवा में **– तवलीन सिंह**	8
03	देशविरोधी बातें तो आहत ही करेंगी **– विवेक काटजू**	10
04	मंजूर नही अपने सुविधा का ऐसा सच **– राजीव सचान**	12
05	अम्बेडकर की आड़ में अफजल के समर्थन का पाखंड **– आशुतोष मित्रा**	14
06	विचारधारा की आड़ में न भूलें राष्ट्रवाद **– डॉ. एके वर्मा**	16
07	स्मृति ईरानी का जवाब और बैकफुट पर विपक्ष **– दिलीप चन्द्र अग्निहोत्री**	18
08	वामपंथियों का पाखंड **– अद्वैता काला**	22
09	महिषासुर बलिदान दिवसः एक छद्म पुर्नव्याख्या **– राजीव रंजन प्रसाद**	24
10	जेएनयू पर विपक्ष का आत्मघाती रवैया **– उमेश चतुर्वेदी**	28
11	जोखिम बढ़ाने वाली आजादी **– दिव्य कुमार सोती**	31
12	महिषासुर के 'आधुनिक मानस–पुत्र' **– पीयूष कुमार दूबे**	33
13	CLASSIC CASE OF DOUBLESPEAK **– Anirban Ganguly**	36
18	UNIVERSITIES BECOMING INCUBATORS OF JIHAD VIRUS **–Balbir Punj**	38
19	HARVESTERS OF DEATH AS SAVIOURS **– Prakash Shah**	41
20	India must stop funding traitors like Umar and Kanhaiya's studies **– R. Balashankar**	44

सोशल मीडिया से

facebook

जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय में रावण से लेकर सुपरनखा तक की पूजा में शामिल होने वाले वे हैं जो खुद को नास्तिक कहते हैं। अचानक इनके अंदर यदि भक्ति जगी है तो इस भक्ति की वजह को समझना कोई रहकेट साइंस नहीं है। जिस सुषमा असुर को आगे रखकर अपनी पूजा को ये नास्तिक जस्टिफाय कर रहे हैं, इन नास्तिकों में से कोई सुषमा के परिवार या खानदान से ताल्लूक नहीं रखता।

जो मुसलमान दोस्त इस समय आनंद ले रहे हैं, उनको समझना चाहिए कल को इसी तरह कोई मोहम्मद का बूत बनाकर भी पूजना शुरू कर देगा और कहेगा कि असम के सोनारघाट में हमारे खानदान के लोग सैकड़ों सालों से मोहम्मद की मूर्ति बनाकर पूजा करते रहे हैं और मोहम्मद की मूर्ति के सामने रामायण का पाठ करते रहे हैं। आप मुंह ताकते रह जाएंगे। इसलिए रावण की पूजा आदिवासी के नाम पर करने वालों को हतोत्साहित करने का यही सही समय है।

वर्ना यह परंपरा चल पड़ी तो यह रोग दूसरे धर्मों को प्रभावित किए बिना ना रह सकेगा।

आशीष कुमार अंशु की फेसबुक वाल से

आपने पिछले कुछ दिनों में देखा ही होगा कि दलितों को भड़काने एवं रोहित वेमुला के समर्थन में सर्वाधिक छातीकूट करने में वामपंथी हैं. आत्महत्या के कुछ माह पहले रोहित वेमुला द्वारा लिखित यह पोस्ट पढ़िए... कैसे रोहित ने हिज हाईनेस सीताराम येचुरी को लताड़ा है।

रोहित लिखता है कि, जब ब्राह्मण येचुरी से पूछा गया कि पिछले ५१ वर्षों से CPM के पोलित ब्यूरो में कोई दलित क्यों नहीं है? तो येचुरी का जवाब था कि जब हमें योग्य दलित व्यक्ति मिल जाएगा तब हम उसे पोलित ब्यूरो में ले लेंगे. तात्पर्य यह है कि वास्तव में रोहित वेमुला वामपंथियों के दोगले व्यवहार से बुरी तरह तंग आ चुका था. वह समझ गया था कि वामपंथी लोग दलितों को यूज कर रहे हैं, इसीलिए नौ दिनों तक अनशन करने के बावजूद कोई वामपंथी उसे देखने तक नहीं आया, क्योंकि वे इंतजार कर रहे थे कि कब रोहित निराश होकर मरे, और ये लोग ओवैसी के साथ मिलकर उसकी लाश नोचने पहुँच जाएँ....

सुरेश चिपलुनकर की फेसबुक वॉल से

बात तो बढ़नी ही थी

२ फरवरी– आतंकी अफजल के समर्थन में पर्चे बंटे।

८ फरवरी– हॉस्टल की दीवार पर पोस्टर चिपकाया गया कि ९ फरवरी को ५ बजे साबरमती ढाबे पर सांस्कृतिक संध्या आयोजित की जाएगी।

९ फरवरी– अभाविप ने प्रशासन से शिकायत की, कार्यक्रम का विरोध किया जिसके बाद प्रशासन ने कार्यक्रम को दी गई अनुमति रद्द कर दी। लेकिन शाम करीब ५ बजे जबरन कार्यक्रम आयोजित किया गया उस कार्यक्रम में वक्ता ने भारत की अखण्डता को चुनौती दी और कश्मीर तथा उत्तर प्रर्व की 'आजादी' का समर्थन किया, भारत विरोधी नारे लगाए। करीब ६.३० बजे साबरमती से गंगा ढाबा तक जुलूस निकालना शुरू किया और नारे लगे– 'भारत के १० टुकड़े होंगे, इंशाल्लाह-इंशाल्लाह', 'कश्मीर की आजादी तक– भारत की बर्बादी तक जंग रहेगी', 'अफजल तेरे अरमानों को मंजिल तक पहुंचाएंगे', 'कितने अफजल मारोगे, हर घर से अफजल निकलेगा', 'पाकिस्तान जिंदाबाद, भारत मुर्दाबाद'।

१० फरवरी– अभावित ने प्रशासनिक भवन के सामने २.३० बजे विरोध प्रदर्शन का आह्वान किया और मांग की कि कार्यक्रम के आयोजकों और कुछ वामपंथी समर्थकों को निरुद्ध किया जाए।

११ फरवरी– अभाविप ने सुबह १० बजे भारतीय झंडे के साथ सभी स्कूलों के आस-पास से रैली की।

१२ फरवरी– एक भाकपा नेता परिसर में आया जिसने वामपंथी शिक्षकों और छात्रों को संबोधित किया और शाम ६ बजे पूरे परिसर में विरोध रैली निकाली। अभाविप ने रात ९.३० बजे जेएनयू४नेशनल्तिम के बैनर तले रैली निकाली।

१३ फरवरी– सीताराम येचुरी, डी. राजा, राहुल गांधी और आनंद शर्मा परिसर में आए, छात्रसंघ अध्यक्ष की गिरफ्तारी का विरोध किया, शाम ६ से ८ बजे के बीच अभाविप ने राहुल गांधी को काले झंडे दिखाए।

१४ फरवरी– जेएनयू शिक्षक संघ ने हड़ताल का आह्वान किया और छात्रों से कक्षाओं का बहिष्कार करने की अपील की, शाम को देशभर के वाम समर्थकों ने परिसर में मानव शृंखला बनाई, आरोपी छात्र के निलम्बन को निरस्त करने की मांग की।

१५ फरवरी– जेएनयू स्टाफ एसोसिएशन ने अभाविप के दृष्टिकोण का समर्थन किया और पुलिस कार्रवाई को सही बताया। अभाविप ने शाम ५.३० बजे गंगा ढाबे से चंद्रभागा तक एकजुटता रैली का आह्वान किया।

२४ फरवरी– उमर खालिद और अनिर्बन भट्टाचार्य ने आत्मसमर्पण किया।

साभारः पांचजन्य

प्राक्कथन

जमानत अदालती प्रक्रिया का न सिर्फ हिस्सा है बल्कि किसी भी मामले में आरोपी द्वारा अपील किया जाने वाला अधिकार भी है। तमाम मामलों में आरोप-पत्र दाखिल होने के बाद आमतौर पर जमानत मिलना कोई अनोखी बात भी नही होती। जमानत मिलने का अर्थ यह भी नही होता कि अदालत ने अभियुक्त को सारे आरोपों से श्बरीश कर दिया है। यहाँ महत्वपूर्ण बात ये नही है कि जमानत मिली है, बल्कि महत्वपूर्ण ये है कि जमानत के साथ माननीय न्यायलय ने कहा क्या है? कोर्ट की टिप्पणी को बताये बिना इस जमानत की कोई व्याख्या सही व्याख्या नही मानी जा सकती है। जी हाँ, कन्हैया को दिल्ली हाई कोर्ट द्वारा सशर्त छः महीने की अंतरिम जमानत दी गयी है। अदालत ने अंतरिम जमानत देते हुए बड़े ही सख्त एवं निर्देशात्मक लहजे में न सिर्फ कन्हैया बल्कि जेएनयू प्रशासन, शिक्षकों सहित छात्रों पर टिप्पणी की है। माननीय कोर्ट ने अंतरिम जमानत देते हुए जो निर्देश दिए हैं उनको पढ़े बिना किसी भी निष्कर्ष पर पहुंचना सिवाय अफवाह को हवा देने अथवा अफवाह का शिकार होने के कुछ भी नही है। पुलिस ने मजबूत पक्ष रखा और कोर्ट ने उसे स्वीकार किया इसका ताजा सुबूत कोर्ट का अह्र्डर है। इस आर्डर को पढने के बाद पता चलता है कि कोर्ट ने पुलिस की दलील को कितनी अहमियत दी है और कन्हैया के लिए क्या निर्देश दिया है।

कोर्ट ने क्या कहा है?

जेएनयू छात्र संघ अध्यक्ष कन्हैया कुमार को अंतरिम जमानत देते हुए अदालत ने सख्त टिप्पणी की है और जेएनयू के हालात पर चिंता व्यक्त की है। देशभक्ति से ओत-प्रोत इंदवीर द्वारा लिखे एक गीत का जिक्र करते हुए जस्टिस प्रतिभा रानी की बेंच ने कहा है कि...

- अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम इस देश में देश विरोधी नारे किसी भी हाल में स्वीकार नही किये जा सकते हैं।
- इस देश के हर नागरिक को यह स्वतंत्रता है कि वो किसी भी विचारधारा से जुड़ सकता है और अपनी बात रख सकता है लेकिन यह सबकुछ वो संविधान के दायरे में रहकर ही करने को स्वतंत्र है।
- कन्हैया कुमार जेएनयू के छात्र संघ अध्यक्ष है लिहाजा उनको इसबात का ख्याल करना चाहिए था कि ऐसे नारे वहां न लगें और ऐसे किसी भी कार्यक्रम का आयोजन कतई न हो।
- जेएनयू के प्राध्यापकों की भी यह जिम्मेदारी है कि वो छात्रों को सही रास्ता दिखाएँ और गलत करने से रोकें।
- जेएनयू के छात्रों में ऐसी बीमारी फैल रही है कि यदि उसको समय रहते न रोका गया तो वो एक महामारी का रूप ले सकती है। शरीर के किसी एक अंग में अगर संक्रमण फैल जाता है तो उसके इलाज के लिए पहले एंटी बायोटिक दी जाती है। अगर नही सही हो

तो अह्पपरेशन किया जाता है। लेकिन अगर वो फिर भी न ठीक हो तो उसे शरीर से अलग किया जाता है।

- जेएनयू जैसे सेफ कैम्पस में यदि कुछ छात्र अफजल गुरु और मकबूल भट्ट के नाम पर नारे लगा रहे हैं तो इसी वजह से क्योंकि हमारे देश के सीमा पर मुश्किल हालातों में देश की रक्षा कर रहे हैं, और अगर नारा लगाने वालों को उन जगहों पर भेजा जाय तो ये १ घंटे भी खड़े नहीं रह सकते हैं।
- ऐसे नारे उन तमाम जवानों का भी अपमान हैं जो खुद शहीद होकर भी हम सबकी रक्षा करते हैं। ऐसा करना अपमान है उन परिवार वालो का भी जिनके अपने सीमा से कफन लपेट कर घर लौटते हैं। ६ फरवरी को कन्हैया नारा लगा रहे थे या नही, इसपर कोर्ट ने रूचि नही दिखाई बल्कि कोर्ट ने इसबात पर ज्यादा प्रकाश डाला है कि जांच सिर्फ ये हो कि कन्हैया वहां कार्यक्रम में शामिल थे या बीच-बचाव करने गये थे।
- अफजल और मकबूल की फोटो को दिल से लगाकर घूमने वाले ऐसे छात्रों को खुद सोंचना चाहिए कि क्या ये सही है! जेएनयू प्रशासन को यह सुनिश्चित करना चाहिए की संसद हमले के दोषी अफजल गुरु की फांसी वाले दिन को उसके शहादत दिवस के तौर पर मनाने और होने वाले कार्यक्रमों पर रोक लगाईं जाय और ऐसा कभी भी भविष्य में न होने पाए।
- कन्हैया कुमार को अंतरिम जमानत देते हुए हाइकोर्ट ने लिखा है कि ''याचिकाकर्ता एक पढ़ने वाला छात्र है और हम उम्मीद करते है की उसने जेल में बिताये वक्त के दौरान जो कुछ जेएनयू में हुआ उस पर सोंचा होगा, आत्मचिंतन किया होगा।'' अनुच्छेद १६(१) के तहत अभिव्यक्ति की आजादी का हवाला देने वालों को अनुच्छेद ५१(ए) में दिए कर्तव्य भी पढना चाहिए।
- "कोर्ट कन्हैया कुमार से यह भी उम्मीद करता है कि जेएनयू छात्रसंघ अध्यक्ष होने के नाते कन्हैया ये सुनिश्चित करेगा की जेएनयू में दोबारा देश विरोधी गतिविधियां नहीं होंगी।"

कन्हैया की जमानत को 'विक्ट्री' बताने वाले लोग अथवा तथाकथित बुद्धिजीवी या तो खुद नासमझी का शिकार हैं या बेहद शातिर ढंग से वे जनता को गुमराह करने की अफवाह रच रहे हैं। जमानत वो भी सशर्त अंतरिम जमानत मिलना भला कन्हैया को निर्दोष साबित करता है क्या? इस आर्डर में ध्यान देने वाली बात ये है कि अदालत ने पुलिस द्वारा दायर किसी आरोप को खारिज नहीं किया है। अर्थात, पुलिस ने कुछ ऐसे साक्ष्य तो जरुर अदालत के सामने रखें हैं जिनके आधार पर अदालत ने आरोप की जांच को स्वीकार किया और कन्हैया को जांच में सहयोग देने का निर्देश दिया है। ऐसे में कन्हैया की जमानत को किसी भी ढंग की 'विक्ट्री' या पुलिस की 'डिफीट' बताना सिवाय लोगों को गुमराह करने के और कुछ भी नहीं है। अब कोर्ट की इस टिप्पणी के बाद क्या ऐसा कुछ बचता है जो और कहा जाय? माननीय न्यायलय ने लगभग हर उस चिंता को व्यक्त किया है जो पुलिस, सरकार और देश की चिंता है। कोर्ट की इस टिप्पणी के बाद अब कम से कम जो लोग कन्हैया की अंतरिम जमानत को 'विक्ट्री' डे के तौर पर मना रहे हैं, उन्हें थोड़ी शान्ति बरतते हुए यह सोचना चाहिए कि आखिर जेएनयू को लेकर कोर्ट की चिंता का समाधान कैसे किया जाय?

अफजल और मकबूल के समर्थन में लगने वाले नारों और कार्यक्रमों को कैसे रोका जाय? जम्मू-काश्मीर को भारत का अभिन्न अंग बताने से इनकार करने वाले छात्रसंघ के वामपंथी पदाधिकारियों को कैसे समझाकर सही रास्ते पर लाया जाय? कोर्ट का आर्डर पढने के बाद यह लगता है कि यह समय जमानत की 'विक्ट्री' सेलिब्रेट करने का नही बल्कि जेएनयू में सुधारों के प्रति चिन्तन करने का है। हालांकि बड़ा सवाल ये है कि कोर्ट के निर्देश के बावजूद क्या वामपंथियों से ऐसे किसी 'चिन्तन' की उम्मीद की जा सकती है?

कोर्ट के जमानत आर्डर में दिए गये निर्देशों के बाद जेएनयू में देश विरोधी नारे लगाने के मामले में अब परतें खुलने लगी हैं। कुछ अन्य आरोपी पुलिस की गिरत में हैं। पूछताछ जारी है। अफजल गुरु और मकबूल भट्ट जैसे सजा प्राप्त आतंकियों का समर्थन करके पहले से ही सवालों में घिरा विपक्ष इस मामले को संसद तक ले गया। संसद के दोनों सदनों में मानव संसाधन विकास मंत्री स्मृति ईरानी द्वारा विपक्ष के सवालों एक जवाब में मजबूत तथ्य रखे गये। स्मृति ईरानी के जवाब के भागते वामपंथी और कांग्रेसी गठजोड़ बहस के पटल पर चारो खाने चित्त नजर आया। देश की सबसे बड़ी पंचायत के माध्यम से पूरे देश ने जेएनयू मामले पर विपक्ष को बेनकाब होते देखा। इसके बाद इस मामले में सिवाय लीपा-पोती करने और उलूल-जुलूल बयान देने के, विपक्षी नेताओं के पास कोई चारा नही रह गया। मानव संसाधन मंत्री स्मृति ईरानी द्वारा न सिर्फ जेएनयू बल्कि रोहित वेमुला मामले पर भी जो तथ्य रखे गये वो जाति की ओछी राजनीति करने वालों को बेनकाब करने के लिए पर्याप्त थे। चारो तरफ से लाचार वामपंथी रहित वेमुला मामले में एक डहृक्टर का बयान खोजकर लाये और स्मृति ईरानी को झूठा साबित करने की असफल कोशिश किये। हालांकि उनका यह तर्क भी तथ्यों के धरातल पर टिक नही सका। चूँकि किसी भी आत्महत्या के मामले में बिना अस्पताल ले गये किसी को मृत नही घोषित किया जा सकता तो फिर वो कौन था जो घटना स्थल पर ही रोहित को मृत घोषित कर दिया? इस सवाल ने चिकित्सक के बयान की पोल खोल दी। महिषासुर प्रकरण ने भी जेएनयू में वामपंथियों को बेनकाब ही किया। खैर, इस बहस के बहाने देश के सामने जेएनयू परिसर में घटने वाली उन तमाम घटनाओं पर देश के आम लोगों का ध्यान तो गया जो इस देश की भावनाओं को आहत करने वाली और जेएनयू में देश विरोधी गतिविधियों को पनाह देने वाली रही हैं और कांग्रेस के शासन में बिना रोक-टोक के चलती रही हैं।

जेएनयू प्रकरण पार्ट-२ः खुलने लगी परतें, नाम से इस संकलन को करने का उद्देश्य सिर्फ यही है कि इस विषय पर वामपंथियों के फैलाए अफवाहों के खिलाफ लोगों को बताया जाय और इस विषय पर विभिन्न मंचों पर प्रकाशित सामग्री को एक जगह संकलित किया जाय। इससे पहले हमने 'जेएनयू प्रकरणः बेनकाब हुए वामपंथी' प्रकाशित किया था जिसे पाठकों की सराहना मिली। इस संकलन में हमने जिन-जिन अखबारों एवं वेबसाइट्स में प्रकाशित लेखों को लिया हैं, उनका आभार व्यक्त करते हैं। जिन लेखकों का लेख लिया है उनका भी आभार व्यक्त करते हैं। श्यामाप्रसाद मुखर्जी फाउंडेसन की तरफ से सभी का पुनः आभार।

शिवानन्द द्विवेदी

डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी फाउंडेसन

जनसत्ता में प्रकाशित लेख

राष्ट्रवाद की हवा में

– तवलीन सिंह

पिछले सप्ताह जिंदगी में पहली बार ऐसा लगा मुझे कि मैं दिल से कट्टर राष्ट्रवादी हूं। यह भावना पैदा हुई जब टीवी पर बार-बार सुनने को मिला कि राष्ट्रवादी होना गलत बात है, क्योंकि अक्सर राष्ट्रवाद के परदे में छिपा रहता है फासीवाद। यूरोप से लिया गया यह शब्द जब भारत में इस्तेमाल होता है तो सिर्फ हिंदुत्ववादियों के लिए। जिहादी तंजीमें, चाहे सजाए-मौत सुनाती हों, अपने आलोचकों को फासीवाद नहीं कहलाती हैं अपने सेक्युलर देश में। खैर, मुझमें जो राष्ट्रवादी होने का अहसास पैदा हुआ, वह और दृढ़ हो गया संसद में जेएनयू और हैदराबाद यूनिवर्सिटी वाले मसलों पर बहस सुन कर। इसलिए, क्योंकि मैंने देखा कि समाजवादी, अर्ध-समाजवादी और मार्क्सवादी राजनीतिक दल, सब एक तरफ हो गए थे राष्ट्रवाद की निंदा करने के लिए और रवींद्रनाथ ठाकुर और बाबा साहेब आंबेडकर का सहारा ले रहे थे अपनी बातों को शक्ति देने के लिए। मेरे कई पत्रकार बंधु राष्ट्रवाद के इस विरोध से खूब प्रभावित हुए। लेकिन मैं नहीं हुई। शायद इसलिए कि दशकों से राजनीति पर लिखने के बाद इतना जान गई हूं कि इन समाजवादी राजनेताओं की बातें अक्सर खोखली निकलती हैं। इस बार भी एक तरफ तो लोकतंत्र के नाम पर दलीलें दे रहे हैं जेएनयू के छात्रों की बोलने की आजादी के लिए तो दूसरी तरफ यही लोग हैं, जिन्होंने लोकतंत्र को हमेशा कमजोर किया है। इन्होंने सेक्युलरिज्म के नाम पर ऐसे राजनेताओं का समर्थन किया है, जिन्होंने लोकतंत्र की आड़ लेकर अपने पुत्र-पुत्रियों को सौंपे हैं पूरे के पूरे राजनीतिक दल। ऐसा करने के बाद जाहिर है कि इनके बच्चे ही पहुंचते हैं संसद में और वे जगह ले लेते हैं, जो उनकी होनी चाहिए जो वास्तव में देश की सेवा करना चाहते हैं। मेरा मानना है कि इस लोकतांत्रिक सामंतवाद के कारण अपने भारत देश का हाल यह हुआ है कि आम नागरिक रोटी, कपड़ा, मकान जैसी बुनियादी सुविधाओं से वंचित है आज भी और अपने जनप्रतिनिधि रहते हैं ऐशो-आराम से आलीशान कोठियों में, जहां न पानी का अभाव महसूस करते हैं, न बिजली कभी गुल होती है। क्या ऐसे भारत पर हमको गौरवान्वित होना चाहिए या शर्मसार? शर्मसार होने के बदले पिछले सप्ताह चर्चा इस पर भी हुई वरिष्ठ राजनीतिक पंडितों और बुद्धिजीवियों के बीच कि क्या अपनी प्रिय भारत माता को बदल डालने की कोशिश की जा रही है मेरे जैसे राष्ट्रवादियों द्वारा, जिसको समाजवादी, सेक्युलर राजनेता यहां तक लाए हैं? मेरी अपनी राय है कि वर्तमान भारत में परिवर्तन की सख्त जरूरत है और इस परिवर्तन की उम्मीद से ही नरेंद्र मोदी को इतना बड़ा जनादेश दिया है इस देश के मतदाताओं ने। सुनिए जरा भारत का हाल आंकड़ों के आईने में। वर्ल्ड बैंक के मुताबिक हर दूसरा भारतीय बच्चा कुपोषित है। भारत की सत्तर फीसद से ज्यादा आबादी इतनी गरीब है कि बीस रुपए रोजाना पर गुजारा करने पर मजबूर है। विश्व बैंक के आंकड़े ये भी बताते हैं कि दुनिया के सत्रह प्रतिशत गरीब

लोग भारत में रहते हैं। इन आंकड़ों को जेहन में रख कर उस तरफ भी नजर डालें कि हमारे अधिकतर बच्चों को इतने रद्दी सरकारी स्कूलों में पढ़ाई करनी होती है जिनमें न अध्यापक होते हैं न पढ़ाई। अन्य सरकारी सुविधाओं का उतना ही बुरा हाल है, चाहे अस्पताल हो या सार्वजनिक यातायात की सेवाएं। फिर इस बात पर भी ध्यान दीजिए कि भारत के शहर और देहात इतने गंदे हैं कि विदेशी पर्यटक जब आते हैं तो हैरान रह जाते हैं। हमारी धार्मिक संस्थाओं और पवित्र नदियों का तो इनसे भी बुरा हाल है। इसके बाद आप अपने से पूछिए कि ऐसे भारत पर हमको गर्व करना चाहिए या इसमें परिवर्तन लाने की गुहार और तेज करनी चाहिए। मुझे विश्वास है कि मोदी को पूर्ण बहुमत तीस वर्षों बाद इसलिए मिली, क्योंकि इस देश का आम आदमी जानता है अच्छी तरह कि परिवर्तन की जरूरत गंभीर है। इस देश का आम आदमी अगर आज तक क्रांति करने पर नहीं उतरा है तो सिर्फ इसलिए कि हमारे सेक्युरलरवादी राजनेताओं की बातों में आकर हमारे समाज के कई वर्ग इस बहकावे में आ चुके हैं कि अगर समाजवादी, सेक्युलर राजनीतिकों को वोट नहीं देता है वह तो भारत की अखंडता को खतरा है। ऐसा है नहीं, लेकिन मोदी के अठारह महीने के शासनकाल पर नजर डालें तो साफ दिखेगा आपको कि प्रधानमंत्री को परिवर्तन के रास्ते से भटकाने के लिए कितनी बार किसी न किसी मुद्दे के बहाने हंगामे खड़े किए गए हैं। मोदी के शपथ ग्रहण समारोह के अगले दिन ही इंडियन एक्स्प्रेस में कांग्रेस के वरिष्ठ राजनेता और गांधी परिवार के वफादार मणिशंकर अय्यर का एक लेख छपा, जिसमें उन्होंने स्पष्ट शब्दों में लिखा कि भारत के आसमान में अब घोर अंधेरा छा गया है। अकेले नहीं थे इस बात को कहने में। याद कीजिए कि तकरीबन यही बात सोनिया गांधी और मनमोहन सिंह ने भी कही थी चुनाव होने से पहले भी। सो आश्चर्य नहीं होना चाहिए हमें कि हर दूसरे महीने कोई नया मुद्दा लेकर संसद को चलने नहीं दिया गया है और सड़कों पर उतर कर आ गए हैं ऐसे राजनेता, जिनके दलों को कुल मिला कर लोकसभा में इतनी थोड़ी सीटें प्राप्त हुई २०१४ के आम चुनाव में कि आज भी नेता प्रतिपक्ष की जगह खाली है। इसके बावजूद इन विपक्षी दलों ने संसद को न चलने देने के बहाने इतने ढूंढ़े हैं कि कई सत्र ऐसे गुजरे हैं जिनमें बहस तक होने नहीं दी गई है। पिछले सप्ताह जेएनयू और रोहित वेमुला पर जब बहस होने दी तो मेरी राय में जीत राष्ट्रवादियों की हुई, लेकिन शायद इसलिए कि इस वातावरण में मैं खुद राष्ट्रवादी बन गई हूं।

❍

नई दुनिया प्रकाशित लेख

देशविरोधी बातें तो आहत ही करेंगी

- विवेक काटजू

जेएनयू में अफजल गुरु की फांसी के खिलाफ हुए प्रदर्शन ने देश में राष्ट्रवाद पर बहस छेड़ दी है। यह हम सभी भारतीयों के लिए एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। इस पर बेहद शांत और संजीदा होकर चर्चा करने की जरूरत है। दुर्भाग्य की बात है कि इसके बजाय विवाद खड़ा किया जा रहा है, जिसमें राजनीतिक पार्टियां अपने हित साधती नजर आ रही हैं। दिल्ली पुलिस द्वारा जेएनयू छात्र संघ के अध्यक्ष कन्हैया कुमार की देशद्रोह के आरोप में गिरफ्तारी ने उन्हें एक अवसर उपलब्ध कराया। कांग्रेस के उपाध्यक्ष राहुल गांधी और कुछ दूसरी विपक्षी पार्टियों के नेताओं ने वामपंथी विचारधारा में विश्वास करने वाले छात्रों से सहानुभूति जताने के लिए जेएनयू कैंपस का दौरा किया। वहीं भाजपा ने अपनी छात्र इकाई एबीवीपी का समर्थन करते हुए उनके इस कदम का विरोध किया। इससे चर्चा ने उग्र रूप धारण कर लिया।

इसमें कोई दो राय नहीं कि जेएनयू परिसर के अंदर जिस तरह के नारे लगाए गए वह किसी भी भारतीय को स्वीकार्य नहीं हो सकते हैं। भारत के टुकड़े-टुकड़े करने के नारों की भला कौन अनदेखी कर सकता है? जवाब स्पष्ट है किसी को भी इसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। एक लोकतांत्रिक समाज में हिंसा का कोई स्थान नहीं है। यदि कहीं हिंसा और गुंडागर्दी होती है, तब इसके लिए जिम्मेदार व्यक्तियों पर कड़ी कानूनी कार्रवाई की जानी चाहिए।

राष्ट्रवाद की चर्चा उस समय आरंभ हुई है, जब पाकिस्तान प्रायोजित आतंकवाद और हाल ही में पठानकोट एयरबेस पर हमले के प्रति नाराजगी के कारण देशप्रेम की भावनाएं हिलोरे मार रही हैं। इसी हते कश्मीर के पांपोर में आतंकवाद के खिलाफ ऑपरेशन में दो युवा कैप्टन समेत पांच जवान शहीद हो गए। आतंकवाद के कारण साल-दर-साल सुरक्षाकर्मियों और आम नागरिकों की मौतें होती रही हैं। लिहाजा देश और राष्ट्र के खिलाफ अभिव्यक्त किया गया एक भी बयान लोगों की भावनाओं को आहत करने और उनके गुस्से को भड़काने के लिए काफी है। देश के राजनीतिक वर्ग और सुरक्षा विशेषज्ञों को यह बात गांठ बांध लेनी चाहिए और इसे कोरी कल्पना मानकर नजरअंदाज नहीं करना चाहिए।

बुद्धिजीवियों और समाजविज्ञानियों ने इस बात का अध्ययन किया है कि कैसे एक देश बनता है। उन्होंने इसका भी परीक्षण किया है कि कौन-से कारक देश को एकता के सूत्र में बांधते हैं। उन्होंने इस बारे में भी लिखा है कि किन कारणों से एक देश दूसरे देश से भिन्न् होता है। ये सभी अकादमिक काम महत्वपूर्ण हैं, लेकिन इसके साथ ही राष्ट्रवाद पर आम जनता की सोच भी इसके बराबर ही मायने रखती है। यदि राह चलता हुआ एक व्यक्ति भारत के संदर्भ में इन मुद्दों की बात करता है तो इसका सीधा अर्थ है कि हर भारतीय राष्ट्रवाद की भावना से ओतप्रोत है। उनकी इच्छा है कि देश तरक्की करे और उनकी सोच में यह बात निहित है कि संकट के समय हर भारतवासी को अपनी क्षमता के अनुसार देश की सुरक्षा

करनी चाहिए। वास्तव में राष्ट्रवाद का सार यही है।

मैं यहां व्यक्तिगत संदर्भ देने के लिए माफी चाहता हूं। पचास साल पहले प्रयाग में कुंभ मेले के दौरान मुझे इसकी सर्वोत्तम तरीके से शिक्षा मिली। जब मैं और मेरे दादाजी (कैलाशनाथ काटजू) देश के दूरदराज से आए दूसरे लाखों देशवासियों के साथ-साथ संगम की ओर बढ़ रहे थे, तब उन्होंने मुझसे कहा कि गंगा मां के लिए हम सभी बराबर हैं और वे हमारे बीच जाति, पंथ, विश्वास या धर्म के आधार पर भेदभाव नहीं करती हैं। यही एकात्मवाद की भावना सबसे ज्यादा मायने रखती है। भारतीय उपमहाद्वीप में रहने वाले लोग राजनीतिक विभाजन और अलग-अलग दर्शन के बावजूद प्राचीन काल से ही इस भावना से लबरेज हैं। यहां भाषा, धर्म और संप्रदायों के आधार पर भी भिन्नताएं मौजूद थीं, लेकिन भारतवर्ष के सभी लोग एक हैं, यह भावना कभी खत्म नहीं हुई। उपनिवेशवाद के दौर में ब्रिटिश शासकों ने माना कि भारत सिर्फ एक भौगोलिक अभिव्यक्ति था। उनके विचार में भारत में रहने वाले लोगों में राष्ट्रवाद की भावना नहीं थी। उनकी निष्ठाएं सिर्फ अपनी जाति, क्षेत्र और धर्म के प्रति थीं। उनका मानना था कि भारत एक राष्ट्र कभी नहीं बन सकेगा, लेकिन भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन ने उन्हें गलत साबित कर दिया। मोहम्मद अली जिन्ना और मुस्लिम लीग ने हालांकि यह सोच उत्पन्न् कर ली कि धर्म एक राष्ट्र का आधार है और इस प्रकार उन्होंने मुस्लिमों के लिए हिंदुओं से एक अलग देश की मांग की। उन्होंने हिंसा फैलाई और परिणामस्वरूप भारत बंट गया। पाकिस्तान का राष्ट्र्रवाद एक त्रुटिपूर्ण सिद्धांत पर कायम है। वह भारत की प्रथा के विपरीत है। इसका नतीजा आज हमारी आंखों के सामने है। वह आज कट्टरपंथी ताकतों का गढ़ बन गया है, जो उसके टुकड़े करने पर आमादा हैं। वह वैश्विक आतंकवाद का भी केंद्र-बिंदु बन गया है और इस लिहाज से दुनिया के लिए बहुत बड़ा खतरा भी। इसके विपरीत भारत ने अपने प्राचीन आदर्शों को कायम रखा है, जिसके अनुसार सभी भारतीय एक परिवार का हिस्सा हैं। यही भारतीय संविधान का मूल सिद्धांत है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी साफ-साफ कहते हैं कि भारत सरकार का एकमात्र ग्रंथ भारत का संविधान है। संविधान से विमुखता भारतीय राष्ट्रवाद से नाता तोड़ने के बराबर है।

भारत जैसे किसी देश में राजनीति, समाज और अर्थव्यवस्था पर अलग-अलग सोच रखने वाले लोगों का होना स्वाभाविक है। प्राचीन काल से ही भारतीय शिक्षा और दर्शन में ऐसी परंपरा रही है। यही भारतीय लोकतंत्र की ताकत है। यहां हर कोई अपनी रुचि और इच्छा जाहिर कर सकता है। यही गुण एक लोकतंत्र को निरंकुश शासन से अलग करता है। लोकतंत्र में लोगों के मौलिक अधिकार सुनिश्चित होते हैं। उन्हें अपने विचारों की आजादी होती है। हालांकि वे अपनी विचारधारा के विस्तार के लिए हिंसा का सहारा नहीं ले सकते। जो लोग हिंसक समाज और हिंसा के जरिए राजनीतिक बदलाव में विश्वास करते हैं, उन्हें कानूनी कार्रवाई का सामना करना पड़ता है।

हाल में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने अपने भाषण में एक महत्वपूर्ण बात कही कि किसी को भी अपने विचार दूसरों पर थोपने नहीं चाहिए। किसी को भी ऐसा नहीं सोचना चाहिए कि सिर्फ उसी की बातें सही हैं। हर भारतीय के अधिकार और विचार महत्वपूर्ण हैं और उन्हें बढ़ावा दिया जाना चाहिए। इस समय देश बाहरी चुनौतियों का सामना कर रहा है। पड़ोसी खासकर भारत के पश्चिम में स्थित देश अस्थिर हैं और पाकिस्तान की दुश्मनी अपनी जगह कायम है। ऐसे समय में राष्ट्रवाद की भावना का आगे बढ़कर प्रदर्शन देश के हित में ही है। ○

नई दुनिया में प्रकाशित

मंजूर नही अपने सुविधा का ऐसा सच

- राजीव सचान

इन दिनों खुद को औरों से बेहतर देशभक्त बताने की होड़ मची है। इस होड़ में जेएनयू के वे छात्र भी शामिल हैं, जिन पर देश-विरोधी नारे लगाने का आरोप है। वे खुद को कुछ अलग और ज्यादा उदार किस्म का देशभक्त बता रहे हैं और अपने आलोचकों-विरोधियों को संकीर्ण-संकुचित एवं श्भक्तष किस्म का करार दे रहे हैं। कुछ ऐसे भी लोग हैं जो दूसरों को कमतर देशभक्त साबित करने के लिए खुद को सगर्व श्देश-विरोधीष घोषित कर रहे हैं, कुछ इस अंदाज में कि सच कहना बगावत है तो हम बागी हैं। विचित्र यह है कि देशभक्तों की इस टोली को यह समझने में परेशानी हो रही है कि देश-विरोध क्या होता है।

इस परेशानी का मूल कारण यह है कि इस टोली ने अपनी सुविधा के लिए भारत और भारत सरकार के बीच की विभाजन रेखा को धुंधला कर दिया है। इसका एक प्रमाण पूर्व केंद्रीय मंत्री चिदंबरम ने दिया। शायद हम सब राष्ट्रविरोधी हैं - इस शीर्षक से लिखे अपने लेख में उन्होंने समझाया है कि दिल्ली पुलिस राजद्रोह अधिनियम की जैसी व्याख्या कर रही है, उसके चलते आप न तो सरकार की निंदा कर सकते हैं और न उसका उपहास उड़ा सकते हैं। वित्तमंत्री के साथ ही देश के गृहमंत्री रह चुके चिदंबरम ने बड़ी चतुराई से जेएनयू में ९ फरवरी को लगे उन नारों का जिक्र नहीं किया जो भारत सरकार नहीं, बल्कि भारत के खिलाफ लगाए गए थे। ऐसी ही चतुराई अन्य तमाम लोग भी दिखा रहे हैं और इस क्रम में यहां तक लिख रहे हैं कि श्यदि राष्ट्रवाद की परिभाषा संकुचित हो तो फिर राष्ट्रविरोधी होना नैतिकता हो जाती है।ष जिस बिहार ने २०१४ में राजद्रोह के १८ मामलों में २८ लोगों को गिरफ्तार किया उसके मुख्यमंत्री नीतीश कुमार भी केंद्र सरकार से पूछ रहे हैं कि राजद्रोह का पैमाना क्या है।

बेहतर देशभक्तों की टोली यह साबित करने के लिए अतिरिक्त मेहनत कर रही है कि जेएनयू में जो नारे लगे, वे अभिव्यक्ति की आजादी के तहत लगे। इस टोली में इसे लेकर तो थोड़ा मतभेद है कि नारेबाजी करने वाले छात्र बावले हैं या प्रखर जनवादी, लेकिन वे इसे लेकर न केवल एकमत हैं, बल्कि एक सुर में बोल भी रहे हैं कि उन्होंने कुछ गलत नहीं किया। जबसे नारेबाजी कांड के एक वीडियो में छेड़छाड़ किए जाने का अंदेशा गहराया है तबसे यह टोली कुछ ज्यादा ही उत्साहित है।

जेएनयू में हुई नारेबाजी के तमाम वीडियो हैं। इनमें से कई विभिन्न् टीवी चौनलों पर दिखाए जा चुके हैं। किसी में ऑडियो अस्पष्ट है तो किसी में स्पष्ट। किसी में चेहरे साफ हैं तो किसी में धुंधले। जो इस मत के हैं कि जेएनयू में कुछ गलत नहीं हुआ, उनके लिए वीडियो भी अस्पष्ट हैं और ऑडियो भी। वे संदिग्ध किस्म के एक वीडियो को बाकी सारे वीडियो से ज्यादा महत्व दे रहे हैं। जो यह मानते हैं कि जेएनयू में कुछ अनर्थ हुआ है वे स्वाभाविक तौर पर इस पर जोर दे रहे हैं कि संदिग्ध किस्म के एक वीडियो की आड़ में बाकी तमाम वीडियो की

अनदेखी करना ठीक नहीं।

ऑडियो-वीडियो की सत्यता की पुष्टि फोरेंसिक जांच के जरिए ही हो पाती है, लेकिन ऐसी किसी जांच के पहले कुछ लोगों ने खुद ही उसकी जांच कर दी और अपना फैसला भी सुना दिया। वे ऐसा व्यवहार कर रहे हैं, मानो पुलिस हों और अदालतों को उनके द्वारा की गई जांच और सुबूतों की रोशनी में अपना फैसला सुनाने में देर नहीं करनी चाहिए।

कायदे से दिल्ली पुलिस को अब तक उन सब वीडियो की जांच करा लेनी चाहिए थी जो जेएनयू में नारेबाजी से संबंधित हैं, लेकिन पता नहीं इतने जरूरी मामले में भी वह इतनी सुस्त क्यों है? उसकी सुस्ती का चाहे जो कारण हो, इस पर गौर करें कि जो जेएनयू में नारेबाजी के वीडियो को महत्व देने को तैयार नहीं, वे यह देखने-समझने को भी तैयार नहीं कि जेएनयू में अफजल गुरु के समर्थन में कैसे पोस्टर चस्पा थे। हां, वे यह खूब जोर-जोर से कह रहे हैं कि देखिए किस तरह इतने प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय की छवि खराब करने का काम हो रहा है। आश्चर्य नहीं कि जैसे यह साबित करने की होड़ मची है कि जेएनयू के छात्रों ने देश-विरोधी नारे नहीं लगाए और जिन्होंने लगाए, वे तो बाहर से आए थे, उसी तरह यह भी कहा जाना लगे कि वहां जो पोस्टर चस्पा किए गए, वे भी बाहर से आए थे और जेएनयू को बदनाम करने के लिए उनमें उन छात्रों के नाम लिख दिए गए जिनसे पुलिस पूछताछ करना चाह रही है।

पता नहीं जेएनयू में देश-विरोधी नारे किसने लगाए और किसने अफजल को शहीद बताने वाले पर्चे-पोस्टर चस्पा किए, लेकिन ऐसे ही एक पोस्टर में कहा गया है - अफजल तुम्हारे अरमानों को हम मंजिल तक पहुंचाएंगे। हो सकता है कल को कोई यह कहने लगे कि अफजल का अरमान तो भारत को एक खुशहाल-उन्नत देश के रूप में देखना था, लेकिन ऐसे पर्चों पर इस विश्वविद्यालय की प्रतिष्ठा के लिए चिंतित प्रोफेसरों व खुद को उत्कृष्ट देशभक्त बताने वालों का मौन सुनने लायक है। यह मौन क्या कह रहा है? निरूसंदेह यह भी ठीक नहीं कि इस मसले पर पीएम भी मौन हैं। आखिर खुद उनकी या उनके कार्यालय की ओर से कोई बयान क्यों नहीं जारी होना चाहिए?

जिन्हें यह लगता है कि किसी ऐसे-वैसे पर्चे पर ज्यादा ध्यान देने की जरूरत नहीं, उन्हें रहमत अली से परिचित होना चाहिए। कैंब्रिज में ३-हैंबरुटन रोड के एक घर में रहमत अली ने २८ जनवरी १९३३ को पहली बार एक पर्चे की शक्ल में ही यह लिखा था कि पाकिस्तान नाम का एक अलग देश क्यों बनना चाहिए। यह बताने की जरूरत नहीं कि १९४७ आते-आते क्या हुआ? जिन्हें यह लगता है कि ऐसे-वैसे नारे तो बस नारे होते हैं, उन्होंने शायद अपनी दृष्टि के साथ अपनी याददाश्त भी धुंधली कर ली है।

❍

दैनिक जागरण में प्रकाशित लेख

अम्बेडकर की आड़ में अफजल के समर्थन का पाखंड

– आशुतोष मित्रा

जेएनयू के कम्युनिस्टों ने अपने पाकिस्तान-प्रेम का पर्दाफाश होते देखकर अचानक अंबेडकर को आतंकवाद और अफजल के आगे खड़ा कर दिया है। देशद्रोह को 'रोहित वेमुला एंगल' देने का यह मास्टर स्ट्रोक है। यह रणनीति सफल हुई, क्योंकि लाखों लोगों को कम्युनिस्टों के बीच अंबेडकर के लिए जागे इस असाधारण आदर के पीछे की रणनीति की जानकारी नहीं है। यह ध्यान देने वाली बात है कि हैदराबाद विवि में याकूब मेनन महानायक बनाया गया और जेएनयू में अफजल गुरु। हैदराबाद के अंबेडकर एसोसिएशन के पूरे कार्यक्रम में कहीं भी दलित का कोई सवाल नहीं था। जेएनयू में नौ फरवरी के कांड में फंसने के बाद ११ फरवरी को कम्युनिस्टों ने अचानक अंबेडकर के नाम पर ही पूरी क्रांति कर दी। यह वाकई विचित्र है कि कम्युनिस्टों ने अचानक उन अंबेडकर को अपना सबसे बड़ा नायक बना दिया, जिनका पूरा विचार बुजरुआ-जनतांत्रिक था और शीतयुद्ध के परिप्रेक्ष्य में कम्युनिस्टों के प्रभाव को रोकने के लिए प्रतिबद्ध था। 'थॉट्स ऑन पाकिस्तान' जैसी किताब के दस पन्नो पढ़ने के बाद कोई कम्युनिस्ट कभी अंबेडकर का नाम लेने की हिम्मत नहीं कर सकता। वामपंथी तो इस मामले में असफल रहे हैं, लेकिन कई एनजीओ काफी समय से इस काम में लगे हैं कि दलितों को हिंदुओं से अलग करके एक अलग 'नस्ल' घोषित करा दिया जाए। अमेरिका-यूरोप की कई बौद्धिक संस्थाएं इस काम में लगी हैं।१क्या वजह है कि कम्युनिस्ट आंदोलन एक भी शीर्ष दलित, महिला, अल्पसंख्यक या आदिवासी नेता नहीं पैदा कर पाया? सबको मालूम है कि सीपीएम में गौरी अम्मा की क्या हालात हुई और अच्युतानंदन को कितनी बार बगावत करके प्रकाश करात को घुटने टेकने के लिए विवश करना पड़ा। दो महीने पहले सीताराम येचुरी ने यह सिद्ध करने की कोशिश की कि दलितों को सर्वोच्च स्तर पर राजनीतिक प्रतिनिधित्व देने की अधिक अहमियत नहीं है। जब माकपा में महिलाओं को प्रतिनिधित्व देने की आवश्यकता का अनुभव हुआ तो ठीक लालू यादव की शैली में शीर्ष नेता ने अपनी पत्नी को ही स्थापित कर दिया। १भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के पुराने और नए महासचिव प्रकाश करात और सीताराम येचुरी जेएनयू छात्रसंघ के अध्यक्ष रह चुके हैं। कम्युनिस्ट तंत्र के शिखर पर बैठे इन दोनों नेताओं का किसान, दलित, आदिवासी, भूमिहीन मजदूरों और यहां तक कि श्रमिक आंदोलनों से संबंध नहीं रहा है। इनके दल ने बंगाल में तीन दशक से अधिक लंबा शासन किया, लेकिन शुरुआती दौर में त्रिभाग आंदोलन के अलावा उनकी कोई उपलब्धि नहीं रही। सीपीआई के नेताओं के विलासी जीवन के दृष्टांत छिपे नहीं हैं। आपातकाल के बाद सीताराम येचुरी के नेतृत्व में 'गिल्टी फोर' आंदोलन में हमारे जैसे सैकड़ों छात्रों ने गिरफ्तारी दी। येचुरी जैसे कम्युनिस्ट नेताओं ने

मोरारजी की एक चेतावनी से आंदोलन वापस ले लिया। इस समय जेएनयू के क्रांतिकारी लोग आपातकाल की याद दिला रहे हैं जबकि सच्चाई यह है कि पूरे आपातकाल में जेएनयू पूरे भारत का अकेला ऐसा कैम्पस था जहां आपातकाल का कोई असर नहीं था। उस समय एक कम्युनिस्ट पार्टी और उसका छात्र संगठन इंदिरा भक्ति में लगा था और दूसरी कम्युनिस्ट पार्टी को भी इंदिरा ने पूरे देश में विरोध का स्वांग करने की अनुमति दी थी। जेएनयू में पूरे आपातकाल में केवल प्रवीण पुरकायस्थ मामले में पुलिस कार्रवाई हुई थी अन्यथा जेएनयू में छात्रों को कभी आपातकाल का आभास तक नहीं हुआ। भारतीय कम्युनिस्टों और जेएनयू के बीच क्रांतिकारिता की एक पाखंडी परंपरा रही है। जेएनयू संघर्ष की नहीं सरकारी सुविधावाद की मिसाल है। सरकारों के पास देश के सैकड़ों विश्वविद्यालयों में चाक डस्टर और शौचालय की व्यवस्था के लिए पैसे नहीं होते। राष्ट्रीय स्तर की कथित प्रतियोगिता में सफल होने वाले छात्रों के भी एक बड़े हिस्से को नेट प्रमाणपत्र देकर खिसका दिया जाता है और कोई छोटी छात्रवृत्ति भी नहीं मिलती। दूसरी ओर जेएनयू के कथित क्रांतिकारियों पर सरकार बेहिसाब पैसा बरसाती है। इलाहाबाद जैसे शिक्षा केंद्रों में लाखों छात्र गरीबी को डोलते हुए भी राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं का सामना करते हैं। दिल्ली केंद्रित मीडिया को इलाहाबाद में एकत्र पूरे प्रदेश के छात्रों की गरीबी, संघर्षशीलता और शैक्षिक उपलब्धियों की कोई जानकारी नहीं है।७जेएनयू के नकली क्रांतिकारियों का समाजविज्ञान के विभागों पर नियंत्रण रहा है। इनका शैक्षिक संसार मार्क्स से शुरू होता है और उसी पर समाप्त हो जाता है। विश्वविद्यालय का बौद्धिक स्तर सामान्य है, लेकिन कुछ छद्म क्रांतिकारी विभाग अपनी संकीर्ण सोच की वजह से मार्क्सवादी मदरसे में बदल गए हैं। इसी छोटे से हिस्से ने जेएनयू को जेहादी-नक्सल यूनिवर्सिटी बनाने का बीड़ा उठा रखा है। इस हिस्से ने अपने घटिया शैक्षिक स्तर को छिपाने के लिए स्वायत्तता का सहारा लिया है। स्वायत्तता का बहाना बनाकर वे सभी मामलों में मनमानी करने की छूट पा जाते हैं। जेएनयू के कम्युनिस्ट शिक्षकों ने स्वायत्तता का दूसरा बड़ा दुरुपयोग देशद्रोही गतिविधियों के संरक्षण में किया है। अफजल कांड के पीछे कई शिक्षक थे। देशविरोधी नारेबाजी के आरोपियों की गिरफ्तारी की सामान्य सी कार्रवाई को उन्होंने फासीवादी बता दिया। इस मामले में शिक्षक संघ ने अपने संकीर्ण स्वार्थो के लिए कबीलाई एकजुटता का प्रदर्शन किया है।७कम्युनिस्ट क्रांतिकारिता की दृष्टि से भारत के अपमान में ही सहिष्णुता का सम्मान है। जेएनयू के कम्युनिस्ट खेमे के लिए स्वायत्तता की तरह सहिष्णुता भी सिर्फ एक स्वांग है। वे सुब्रमण्यम स्वामी और रामदेव को सहन नहीं कर सकते, लेकिन अफजल जैसा आतंकी उनके लिए आदरणीय बन जाता है। ४० साल पहले हम लोगों को बस में भरकर दिल्ली स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स ले लाया गया था जहां योजनाबद्ध तरीके से सुब्रमण्यम स्वामी को भाषण से रोकने के लिए उपद्रव कराया गया। इसी तरह दो फ्री थिंकर्स पर प्राणघातक हमला कराया गया, जिसके एक शिकार इस समय के वरिष्ठ खेल पत्रकार हैं। उस समय भी अल्पसंख्यक कम्युनिस्ट कैडर शान से अपनी धार्मिकता का प्रदर्शन करते थे, लेकिन हिंदू शब्द के लिए आदतन अपमानजनक भाषा का इस्तेमाल न करना फासीवाद माना जाता था। उन्होंने डांगे, रामविलास शर्मा और उर्दू पर एक लेख के लिए नामवर सिंह तक को नहीं छोड़ा। हमारी एक आदरणीय शिक्षिका ने हमारे टर्म पेपर को इसलिए अस्वीकृत कर दिया, क्योंकि उसमें भारत को प्राचीन काल से एक राष्ट्र मानने का विचार था। वे इस विचार पर उत्तीर्ण होने भर का अंक देने को तैयार नहीं थीं। ○

नई दुनिया में प्रकाशित

विचारधारा की आड़ में न भूलें राष्ट्रवाद

– डॉ. एके वर्मा

प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू की मृत्यु के पांच वर्ष बाद १९६९ में जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय (जेएनयू) की स्थापना हुई थी। जेएनयू देश का प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय है और उसमें हुई हाल की घटनाओं से लोग चिंतित हैं। नेहरू ने कहा था कि एक विश्वविद्यालय मानवता के लिए है। वह सहिष्णुता, विवेक, साहसिक विचारों और सत्य की खोज के लिए है। यदि विश्वविद्यालय अपने दायित्वों का सम्यक निर्वहन करते हैं, तभी वे राष्ट्र और जनता के साथ हैं। क्या जेएनयू नेहरू की अपेक्षाओं पर खरा उतरा है? जेएनयू विवाद में अनेक मुद्दे एक साथ उलझ गए हैं, जैसे विश्वविद्यालय की स्वायत्तता, छात्रों की स्वतंत्रता, राष्ट्रवाद, सेक्युलरिज्म व वामपंथी विचारधारा के मिश्रण से उपजे माहौल की आड़ में कुछ राष्ट्र-विरोधी तत्वों की गतिविधियां आदि। जेएनयू शुरू से ही वामपंथी बुद्धिजीवियों की गिरत में आ गया, क्योंकि इसे बनाने और नियुक्तियों का दायित्व वामपंथी-उदारवादी और मार्क्सवादी बुद्धिजीवियों को दिया गया।

१९६० के दशक में विकासशील देशों में मार्क्सवाद व साम्यवाद शिक्षा और राजनीति, दोनों में विमर्श के प्रधान विषय थे। माकपा के पूर्व महासचिव प्रकाश करात जेएनयू छात्रसंघ के प्रथम अध्यक्ष रहे और तब से आज तक वहां वामपंथ का ही बोलबाला है। उन्होंने प्रधानमंत्री मोदी पर आरोप लगाया कि वह विश्वविद्यालयों में श्वैचारिक वर्चस्वष की स्थापना कर रहे हैं, लेकिन करात यह भूल गए कि यह काम तो वामपंथी विद्वानों और कम्युनिस्ट पार्टी ने शुरू से ही किया है तथा ज्यादातर विश्वविद्यालयीन नियुक्तियों में यह सुनिश्चित किया कि केवल वामपंथी विद्वान ही नियुक्त हों व छात्रों में भी वामपंथी विचारधारा को प्रोत्साहित किया जाए। किंतु विश्वविद्यालयीन स्वायत्तता का यह मतलब तो नहीं कि प्रतिस्पर्धी दक्षिणपंथी विचारधारा के विद्वानों को कोई श्स्पेसष ही न दिया जाए। आज जब भी किसी दक्षिणपंथी या गैर-वामपंथी विद्वान की नियुक्ति होती है, उसे आरएसएस या भाजपा से संबद्ध कर हो-हल्ला मचाया जाता है। क्या देश में केवल वामपंथी विचारों के ही विद्वान मान्य हैं? क्या यह वैचारिक असहिष्णुता नहीं?

दूसरा मुद्दा छात्रों की स्वतंत्रता का है। छात्रों की स्वतंत्रता के अधिकार पर न कोई असहमति है, न विवाद। उसके बिना तो उच्च शिक्षा का अर्थ ही नहीं, लेकिन विवाद स्वतंत्रता को परिभाषित करने को लेकर है। वैश्वीकरण के युग में सांस्कृतिक परिवेश तेजी से बदल रहा है और कब छात्रों की स्वतंत्रता उनकी स्वच्छंदता में बदल जाती है, पता नहीं चलता। क्या समाज और देश के प्रति छात्रों की कोई जवाबदेही है या नहीं?

जेएनयू की छात्र राजनीति शुरू से ही वामपंथी रुझान वाली रही है। वर्ष २००५ तक तो

उसमें माकपा की छात्र इकाई स्टूडेंट फेडरेशन ऑफ इंडिया (एसएफआई) का वर्चस्व रहा, उसके बाद नक्सलवादी रुझान वाली भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी-लेनिनवादी) के छात्र संगठन श्आइसाष् के नियंत्रण में आ गई। एसएफआई के वर्चस्व का आधार बंगाली और मुस्लिम छात्रों का गठजोड़ था, लेकिन १९९६ में शिक्षण संस्थाओं में ओबीसी के आरक्षण और १९९७ में पश्चिम बंगाल में कम्युनिस्ट सरकार द्वारा नंदीग्राम में पुलिस बर्बरता ने उस गठजोड़ को तोड़ दिया। आरक्षण विवाद ने बंगाली भद्रलोक को उससे अलग कर दिया तो नंदीग्राम ने मुस्लिमों को, क्योंकि उसमें कई मुस्लिम मारे गए। इसी विघटन का लाभ उठाकर नक्सली रुझान वाली श्आइसाष् ने अपना आधार बना लिया। जब श्आइसाष् के दबाव में जेएनयू ने मदरसों के सर्टिफिकेट को भी कॉलेज डिग्री के समकक्ष मान लिया तो मुस्लिम छात्र श्आइसाष् के साथ पूरी तरह चले गए।

कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया से संबद्ध वर्तमान अध्यक्ष कन्हैया कुमार ने आइसा, एसएफआई और अन्य वामपंथी घटकों के साथ-साथ दलित छात्रों को भी अपने साथ कर लिया। इससे कोई समस्या नहीं, क्योंकि विचारधारा के स्तर पर वामपंथ का छात्रों पर कब्जा है तो भारतीय लोकतंत्र और संविधान उसकी इजाजत देता है। लेकिन मूल प्रश्न यह है कि क्या विचारधारा के आवरण में छात्रों को विश्वविद्यालय परिसर को राष्ट्र-विरोधी गतिविधियों के लिए प्रयुक्त करने का अवसर देना चाहिए? विश्व के अनेक विश्वविद्यालयों में भी छात्र राजनीतिक गतिविधियां करते हैं। दुनिया में नंबर एक माने जाने वाले हार्वर्ड विश्वविद्यालय में हार्वर्ड-स्क्वायर पर प्रायः विभिन्न् देशों के छात्र अपने देश से संबद्ध आयोजन करते रहते हैं, पर वे वहां अमेरिका-मुर्दाबाद और चीन-जिंदाबाद के नारे नहीं लगाते। क्या विचारधारा व राष्ट्रवाद के बीच कोई संतुलन नहीं हो सकता? क्या विचारधारा के प्रति इतना मोह होना चाहिए कि अपनी पार्टी या संगठन के सदस्य आतंकी गुटों या राष्ट्र-विरोधी तत्वों के समर्थन में जाएं, फिर भी हम उनका समर्थन करें? यदि देश व लोकतंत्र ही नहीं बचेगा तो विरोध और आलोचना जैसे अप्रतिम अधिकारों का क्या होगा?

जेएनयू के छात्र प्रबुद्ध हैं और अवश्य वे इस पर गहन चिंतन करेंगे और स्वयं कोई लक्ष्मण-रेखा निर्धारित करेंगे, क्योंकि जेएनयू की गतिविधियों का अन्य विश्वविद्यालयों पर भी असर होगा, जैसा कि जादवपुर यूनिवर्सिटी में हुआ। जो आजादी छात्रों को जेएनयू व अन्य विश्वविद्यालयों में मिल रही है और जैसी आजादी देश में है, अब और उससे ज्यादा क्या आजादी चाहिए और क्यों?

हमारी चिंता उन तत्वों को चिन्हित करने की है जो आतंकी अफजल व इशरत जहां का महिमामंडन करने पर तुले हैं, न कि कन्हैया या किसी छात्र को जेल भेजने की। जेएनयू पर देश को गर्व है। जेएनयू के छात्रों को मौजूदा विवाद से उपजे सवालों को शीघ्र हल कर जनता का विश्वास बनाए रखना चाहिए।

❍

(आईचौक.इन में दो हिस्सों में प्रकाशित लेख)

स्मृति ईरानी का जवाब और बैकफुट पर विपक्ष

- दिलीप चन्द्र अग्निहोत्री

संसद में अपना पक्ष रखते हुए स्मृति ईरानी ने अपनी उस योग्यता को प्रमाणित किया है जो किसी ऊंची डिग्री की मोहताज नहीं है। यह निष्कर्ष केवल इस बात से नहीं निकाला जा सकता कि उन्होंने संसद में २४ फरवरी को जोरदार भाषण दिया, बल्कि इसलिए कि उन्होंने मानव संसाधन मंत्री के रूप में अपने कर्तव्यों का बखूबी निर्वाह किया है। लगातार आरोप झेलते हुए वह अपना कार्य पूरी निष्ठा से करती रहीं लेकिन जब जबाव दिया तो एक ही झटके में विरोधियों की बोलती बंद हो गई।

इनमें वह लोग भी शामिल हैं जिन्होंने ईरानी पर निजी हमले किए थे, वह लोग भी शामिल थे जिन्होंने योजनाबद्ध रूप से केन्द्रीय विश्वविद्यालयों की कतिपय घटनाओं पर राष्ट्रव्यापी हंगामा किया था। वह लोग भी शामिल थे जिन्होंने शिक्षा के भगवाकरण करने, संघ के स्वयं सेवकों को विश्वविद्यालय का कुलपति बनाने, विश्वविद्यालयों में अपनी विचारधारा थोपने व दूसरों के विचार दबाने, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता समाप्त करने तथा दलित विरोधी होने का आरोप लगाया था। ये सभी आरोप एक बड़ी मुहिम के रूप में चलाए जा रहे थे। कांग्रेस और कम्युनिस्ट पार्टी के बड़े नेता खुलकर इस मुहिम में शामिल थे।

स्मृति ईरानी ने ऐसा आरोप लगाने वाले सभी लोगों को एक साथ धराशायी किया है। राष्ट्रविरोधी तत्वों का साथ देने वाले नेताओं को आईना दिखाया है। वहीं अपने मंत्रालय के कार्यों का ब्योरा भी पेश किया। पिछली सरकार में मानव संसाधन मंत्री रहे कपिल सिब्बल के गलत कार्यों का उल्लेख किया। इसमें शिक्षा को विकृत करने वाले तत्व शामिल थे। कपिल सिब्बल तो बहुत काबिल, शिक्षित और डिग्रीधारक थे लेकिन तीस्ता सीतलवाड़ जैसे लोगों की अपरोक्ष सलाह से भारतीय परिवेश व मूल्यों पर आधारित शिक्षा व्यवस्था बनायी ही नहीं जा सकती।

उस समय विश्वविद्यालयों में यही चल रहा था। स्मृति सुधार में लगी थीं। ६६ हजार से ज्यादा प्रत्यावेदनों का समाधान उनकी क्रियाशीलता का प्रमाण है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और दलितों के हित का दावा करने वाले स्मृति के भाषण से बेनकाब हुए हैं। राहुल गांधी, ज्योतिरादित्य सिंधिया, मायावती, सीताराम येचुरी, प्रकाश करात आदि नेता कितनी लचर तैयारी से राजनीति करते हैं इसका भी देश के सामने खुलासा हुआ।

ये राहुल गांधी ही थे जो दो बार हैदराबाद के केन्द्रीय विश्वविद्यालय में गए थे जहां छात्र रोहित वेमुला ने आत्महत्या की थी। यहीं से उन्होंने केन्द्र सरकार को उसका हत्यारा घोषित किया था। पूरी सरकार को दलित विरोधी करार दिया था। स्मृति डेढ़ महीने तक चुप रहीं लेकिन जब बोली तो आरोपों की कलई खुल गयी। रोहित को अंतिम समय में स्मृति ईरानी

द्वारा खुद मुख्यमंत्री को फोन मिलाने के बावजूद डाक्टरी सहायता नहीं मिली। उन्होंने फोन पर बात नहीं की, गुनाहगार कौन है, इसका अनुमान लगाया जा सकता है। इतना ही नहीं तेलंगाना में ६०० छात्रों की मौत के बाद भी राहुल वहां नहीं गए थे। यह बात भी देश के लोगों को पता चला।

देश ने यह भी जाना कि रोहित वेमुला का विश्वविद्यालय से निष्कासन का फैसला जिस समिति ने लिया था उसके सभी सदस्य संप्रग सरकार के समय नियुक्त हुए थे। देश ने यह भी जाना कि दलितों की राजनीति करने वाली बसपा प्रमुख मायावती इस मामले में कितनी अपडेट रहती हैं। वेमुला आत्महत्या मामले की जांच के लिए बनी समिति में डेढ़ महीने पहले ही दलित प्रोफेसर शामिल थे। जबकि मायावती राज्यसभा में दलित को समिति में शामिल करने संबंधी सवाल पूंछ रही थीं। इसके बाद मायावती को अपने सलाहकारों से अवश्य सवाल पूछना चाहिए जिन्होंने उन्हें पूरी जानकारी नहीं दी। यह भी पता चला कि हैदराबाद के दलित मसले को वह कितना महत्व देती हैं।

मायावती के सामने बोलने या बहस करने से अच्छे-अच्छे नेता घबराते हैं, लेकिन राज्यसभा में स्मृति ईरानी के सामने देश ने पहली बार मायावती को हतप्रभ देखा। लगा कि उनके पास बोलने को कुछ बचा ही नहीं है। दलित विरोधी होने का उनका आरोप हवा में उड़ता दिखाई दिया। राहुल गांधी के इस आरोप की धज्जियां उड़ते देश ने देखा कि संघ के स्वयंसेवकों को कुलपति बनाया जा रहा है। स्मृति ने बताया कि अधिकांश कुलपति संप्रग शासन के दौरान नियुक्त हुए हैं। राहुल और वामपंथी नेताओं को स्मृति ईरानी द्वारा दी गयी चुनौती स्वीकार करनी चाहिए। इन नेताओं ने शिक्षा के भगवाकरण का आरोप लगाया था। स्मृति ईरानी ने कहा कि आरोप साबित हुआ तो राजनीति छोड़ देंगी। अब राहुल और उनके वामपंथी साथियों की जिम्मेदारी है कि वह आरोप साबित करें।

विश्वविद्यालयों में विष बोते वामपंथी

प्रजातांत्रिक देशों में मतभेद और उसकी अभिव्यक्ति का अनुकूल माहौल होता है, लेकिन राष्ट्रहित का तकाजा यह है कि मतभेद का विस्तार मनभेद तक नहीं होना चाहिए। इसका मतलब है कि राष्ट्रीय हित के कतिपय विषय ऐसे होने चाहिए जिन पर दलगत सीमा से ऊपर उठकर राष्ट्रीय सहमति होनी चाहिए। इस सहमति का अवसर के अनुरूप प्रदर्शन भी होना चाहिए, जिससे सीमा पार तक यह संदेश जाए कि हमारा देश राष्ट्रहित से समझौता करने को तैयार नहीं है। ऐसे मसलों पर सवा अरब की आबादी का एक स्वर होगा। देश की एकता-अखण्डता, आतंकवाद का विरोध आदि ऐसे मसले हैं, जिन पर देश को एकजुटता दिखानी चाहिए। मतभेद प्रदर्शित करने वाले विषयों की कमी कभी नहीं होती। केवल कुछ विषयों को उनसे अलग रखने की अपेक्षा की जाती है, लेकिन वामपंथियों और कांग्रेस की इस मामले में जुगलबंदी ने कई गंभीर प्रश्न उठाए हैं। देश को उन पर विचार करना होगा।

जेएनयू प्रकरण और उसके बाद की गतिविधियों के आधार पर कहा जा सकता है कि देश में वामपंथी वैचारिक रूप से ऐसा वर्ग तैयार कर चुके हैं, जिसे राष्ट्रविरोधी आवाज उठाने में

कोई संकोच नहीं होता। फिलहाल संतोष की मात्र इतनी बात है कि इनकी संख्या बहुत कम है। जनसामान्य इनके विचारों से प्रभावित नहीं है, लेकिन वहीं चिन्ता की बात यह है कि विश्वविद्यालयों में इनके छात्र संगठन सक्रिय हैं। यह पाकिस्तान और कश्मीर की आजादी की मांग उठाने वालों को मंच उपलब्ध कराते हैं। इसका खतरनाक पक्ष यह भी है कि देश की राष्ट्रीय पार्टी कांग्रेस का छात्र संगठन भी परोक्ष-अपरोक्ष रूप से इनके समर्थन में आ जाता है। छात्र संगठनों की यह जुगलबन्दी इनके राष्ट्रीय नेतृत्व तक जा पहुंचती हैं। इसी का नतीजा है कि राहुल गांधी और सीताराम येचुरी, डी। राजा आदि एक मंच पर दिखाई देते हैं। इसका असर केसी त्यागी जैसे नेताओं पर भी दिखाई देता है। उनकी पार्टी जद(यू) जब सत्रह वर्षों तक राजग में थी, तब केसी त्यागी जैसे नेता भारत विरोधी नारों को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता नहीं मानते थे, लेकिन जैसे ही कांग्रेस से उनका गठबंधन हुआ, बोली बदल गयी। वह भी कश्मीर की आजादी की मांग को अभिव्यक्ति की आजादी मान बैठे।

अन्यथा इन नेताओं को जवाब देना चाहिए कि जेएनयू में राष्ट्रविरोधी नारों से अपने को अलग करने में इन्हें चार दिन क्यों लगे, जबकि नारों के वीडियो तत्काल सामने आ चुके थे। दूसरा गंभीर प्रश्न भी इसी से जुड़ा है, क्या कारण था कि राष्ट्र विरोधी नारेबाजी के वीडियो से छेड़खानी का प्रयास किया गया, यह बताने का प्रयास किया गया कि इसके पीछे संघ, भाजपा के सदस्यों का हाथ था, लेकिन जब पुलिस की कार्रवाई से सच्चाई सामने आने लगी तो, इन नेताओं के स्वर बदलने लगे। करीब चार दिन बाद कांग्रेस का अधिकृत बयान आया कि पार्टी ९ फरवरी की घटना से अपने को अलग करती है। इसमें कश्मीर की आजादी के नारे लगे थे, भारत के खिलाफ लगातार जंग का ऐलान हुआ था, संसद पर हमले की योजना बनाने वाले अफजल का गुणगान हुआ था। वामपंथी नेताओं के साथ राहुल गांधी के जेएनयू पहुंचने के पहले ये सभी राष्ट्र विरोधी नारे देश के सामने आ चुके थे, लेकिन दिल्ली की ही इस घटना से कांग्रेस जद(यू) और वामपंथी कई दिन तक अनजान बने रहे।

जेएनयू प्रकरण ने यह साबित किया कि वामपंथी विचारधारा विश्वविद्यालयों में ऐसी युवा पौध तैयार कर चुकी है, जो भारत विरोधी तत्वों को मंच उपलब्ध कराती है। उस कार्यक्रम के वीडियो देश के सामने हैं। इसमें वामपंथी आयोजन का मकसद देखा जा सकता है। इसमें कुछ लोग पाकिस्तानी आतंकी सरगना के बनाए भारत विरोधी नारों पर नाच रहे हैं, कुछ लोग तालियां बजाकर अपना समर्थन व्यक्त कर रहे हैं, कुछ लोग तटस्थ भाव से यह सब देख रहे हैं। ये सभी वामपंथी छात्र संगठनों के सदस्य हैं। ऐसे में राष्ट्रद्रोही केवल वह नहीं है, जिन्होंने आतंकी शैली के नारे विश्वविद्यालय में बुलन्द किए वरन् तालियां बजाकर उस पर थिरकने वाले और तटस्थ भाव से राष्ट्रविरोधी नारे सुनने वाले सभी अपराधी हैं। कुछ लोगों का तर्क है कि जेएनयू छात्रसंघ का अध्यक्ष पाकिस्तान समर्थक नारे लगाते दिखाई नहीं दे रहा है, लेकिन वहां लगे नारों के प्रति उसका उत्साह साफ दिखाई दे रहा है।

सवाल यह है कि अभिव्यक्ति की आजादी के नाम पर उन तत्वों को मंच क्यों उपलब्ध कराया गया जिनकी सहानुभूति पाकिस्तान और अफजल के प्रति जगजाहिर थी। इनसे भारत

के हित में बात करने की उम्मीद ही नहीं थी। जेएनयू छात्र संघ का अध्यक्ष और उसका वामपंथी छात्र संगठन इस आयोजन की तैयारी पहले से कर रहा था। एक पल को माना जा सकता है कि अध्यक्ष (कन्हैया कुमार) और अन्य आयोजकों को वहां भारत विरोधी नारे लगने का पूर्व अनुमान नहीं था, लेकिन जब नारे लगे रहे थे, तब उनके सामने दो ही विकल्प थे, एक यह कि वह उन नारों को शांतिपूर्ण ढंग से रोकने का प्रयास करते, उसका शांतिपूर्ण प्रतिरोध करते। दूसरा विकल्प यह था कि वह उस स्थान से हट जाते तथा पुलिस में शिकायत दर्ज कराते लेकिन छात्र संघ अध्यक्ष सहित सभी आयोजक बड़े उत्साह के साथ उस आयोजन में हिस्सेदारी कर रहे थे।

वामपंथी संगठनों को जवाब देना होगा कि वह विश्वविद्यालयों में राष्ट्रविरोधी तत्वों को मंच क्यों उपलब्ध कराते हैं, क्यों वह अफजल, कसाब जैसे आतंकियों का महिमामण्डन करने वाले कार्यक्रमों को समर्थन देने के लिये दौड़ पड़ते हैं, क्यों वह बीफ पार्टियों का आयोजन करने वालों में शामिल हो जाते हैं। भले ही ऐसा आयोजन करने वाले जातिवादी संगठन के सदस्य हों, जबकि वामपंथी विचारधारा तो विश्व को दो जातियों में विभाजित मानती है- अमीर और गरीब। फिर वह जाति और मजहब की राजनीति में खुलकर सामने क्यों आ जाते हैं।

हैदराबाद के केन्द्रीय विश्वविद्यालय में भी यही हुआ था। बीफ पार्टी का आयोजन करने वालों तथा आतंकियों की बरसी मनाने वालों को वामपंथियों व कांग्रेसी संगठनों ने समर्थन किया था। यदि उस घटना की तह में पहुंचें तो साफ होगा कि दलित छात्र की आत्महत्या के अपरोक्ष गुनाहगार ऐसे ही तत्व थे जो छात्रों को विषैली तालीम दे रहे हैं, जिसके कारण सामाजिक सौहार्द की जगह विभाजन की बात होती है। एकता-अखण्डता की जगह कश्मीर के अलगाववाद को समर्थन दिया जाता है, अहिंसा की जगह आतंक का महिमामण्डन होता है। इस स्थिति के लिए विश्वविद्यालयों के वामपंथी शिक्षक भी बहुत जिम्मेदार हैं। इन पर अंकुश की आवश्यकता है।

इसी प्रकार जेएनयू प्रकरण पर राजनीति कर रहे नेता बेनकाब हुए हैं। इन्हें बताना होगा कि ये संसद पर हमला करने वालों के साथ हैं? इन्हें बताना होगा कि इनकी आस्था महिषासुर के प्रति है या मां दुर्गा के प्रति, इन्हें बताना होगा कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का किस हद तक विस्तार चाहते हैं। जाहिर है स्मृति ईरानी के भाषण ने देश में चल रही अफजल हिमायती राजनीति की कलई खोली है। सच्चाई देश के सामने आ गयी है। इसीलिए प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने स्मृति ईरानी के भाषण की तारीफ करते हुए ट्वीट किया-सत्यमेव जयते।

❍

दैनिक जागरण में प्रकाशित

वामपंथियों का पाखंड

– अद्वैता काला

जेएनयू के घटनाक्रम पर मुखर वामपंथी दलों को केरल में संघ कार्यकर्ता की हत्या पर भी चुप्पी तोड़ने की जरूरत है।

सुजीत एक दिहाड़ी मजदूर था। वह ठेके पर पेंटिंग का काम करने के क्रम में नौकरी दर नौकरी भटकता रहा। आरएसएस की शाखाओं में जाने के अतिरिक्त वह अपनी मौत के दिन तक संघ के सभी दायित्वों से मुक्त हो चुका था। दरअसल उसकी आर्थिक मजबूरियों ने उसके सामने ऐसे हालात पैदा कर दिए थे कि वह बिना पारिश्रमिक के कोई काम नहीं कर सकता था। चार लोगों के परिवार में सुजीत ही एक ऐसा था जो कमाने के योग्य था। उसके मां-बाप बूढ़े हो गए थे, जबकि २८ वर्षीय उसका बड़ा भाई जयेश मानसिक रूप से अशक्त था। पूरे परिवार की देखभाल की जिम्मेदारी उसके कमजोर कंधों पर ही थी। सुजीत का सबसे पहला जुड़ाव माकपा के साथ हुआ। कन्नूर जिले में इसका व्यापक राजनीतिक प्रभाव था, आज भी है। इसका जिक्र लेफ्ट के गढ़ के रूप में करते हैं। बाद में सुजीत का माकपा से मोहभंग हो गया और उससे उसने नाता तोड़ आरएसएस से नाता जोड़ लिया। उन दिनों उसके गांव अरोली में आरएसएस की शाखा आरंभ होनी थी। १सुजीत अपने आसपास गलत होते नहीं देख पाता था। इसी स्वभाव के कारण गांव में उसकी छवि एक परोपकारी इंसान की बन गई थी। उसकी जीवन की यही कमाई भी थी। उसकी अंत्येष्टि में शामिल होने आए लोग भी उसकी अच्छाई का गुणगान करते देखे गए। विभिन्न धर्मो के लोग उसको अंतिम विदाई देने आए थे। एक आरएसएस कार्यकर्ता ने मुङो बताया कि अपने दोस्ताना व्यवहार के कारण ही सुजीत अपने पड़ोस में दो स्कूली बच्चों के बीच उत्पन्न विवाद को सुलझाने में सफल रहा था। उसके पड़ोस में रहने वाले कक्षा दस के एक लड़के को एक लड़की के सगे-संबंधी धमकियां दे रहे थे। जाहिर है कि उसके बाद लड़के के परिवार वाले भी तैश में आ गए और लड़की के परिजनों को खरी-खोटी सुनाने लगे। पल भर में हालात गंभीर हो गए। बाद में यह मामला वहीं रहने वाले सुजीत के पास ले जाया गया। उसने इस विवाद को बेहद शांति और दोस्ताना माहौल में सुलझा दिया। दोनों पक्षों ने एक दूसरे से यह सुनिश्चित भी किया कि आगे से लड़के और लड़की के बीच किसी तरह की बातचीत या संवाद नहीं होगा। इस पहल से मामला शांत हो गया। दोनों का स्कूली जीवन फिर ढें पर आ गया और सुजीत की दिनचर्या भी उसी गति से चलने लगी। बात तब बिगड़ गई जब इस घटना की खबर उसके क्षुब्ध चाचा, जो माकपा से जुड़े हुए हैं, के कानों में पहुंची। उसी रात सुजीत को मार दिया गया। आरोप लगाया जाता है कि १५-१६ लोगों का एक समूह मामले का पटाक्षेप करने के इरादे से उसके घर पहुंचा।

उनका असली मकसद सुजीत पर गुस्सा निकालना था। लड़के-लड़की के परिवार का वहां कोई अता-पता नहीं था। वे मामले को भुला चुके थे। उन लोगों ने करीब डेढ़ घंटे तक सुजीत को बेदर्दी से पीटा। सुजीत के परिवार वाले उनसे दया की भीख मांगते रहे, लेकिन उन्होंने किसी की नहीं सुनी। यहां तक कि उन्हें भी मारा-पीटा गया। सुजीत की मां का हाथ टूट गया। अरोली के लोगों में दहशत फैल गई। कन्नूर राजनीतिक रूप से काफी संवेदनशील है और वहां राजनीतिक हिंसा रह-रहकर सामने आती रहती है। केरल हाईकोर्ट ने इस राजनीतिक हत्या पर कड़ी टिप्पणी की है। पिछले साल माकपा के कुछ कार्यकर्ताओं के भाजपा में जाने के मुद्दे के कारण दोनों दलों में ोहसक संघर्ष छिड़ गया था। भाजपा के जिला अध्यक्ष के घर पर बम फेंका गया, जिसमें वह बाल-बाल बचे। कन्नूर के एक पत्रकार उल्लेख एनपी ने इस जिले को भारत के सिसिली की संज्ञा दी है, जहां बदले की भावना से हत्याएं आम बात है। यहीं से केरल में कम्युनिस्ट आंदोलन की शुरुआत हुई थी। कम्युनिस्टों को चुनौती देने के कारण पिछले दस साल में विभिन्न दलों के ४१ लोग राजनीति प्रेरित हत्याओं के शिकार हो चुके हैं। २०१२ में इंडियन यूनियन मुस्लिम लीग के एक युवा नेता अब्दुल शकूर की धान के खेत में हत्या कर दी गई थी। उसकी हत्या के आरोपियों में अधिकांश माकपा से संबद्ध हैं। शकूर पर आरोप था कि उसने माकपा के नेता की गाड़ी पर हमला किया था, जिसमें उन्हें मामूली चोटें आई थीं। ऐसा नहीं है इस क्षेत्र में माकपा ही हमेशा आक्रामक रही है। बदले की भावना वाली राजनीति सिर्फ उसी के कार्यकर्ता नहीं करते हैं, बल्कि कभी-कभी वे इसके शिकार भी होते रहे हैं। लेकिन यह कल्पना करना काफी कठिन है कि कन्नूर जिला और दिल्ली का जेएनयू, दोनों एक ही देश में स्थित हैं। एक तरफ कम्युनिस्ट दल जेएनयू के एक युवा छात्र की गिरफ्तारी पर हंगामा खड़ा कर रहे हैं अभिव्यक्ति की आजादी पर खतरा बता रहे हैं और दूसरी तरफ एक युवा की बर्बर हत्या (जिसके आरोप में माकपा के छह कार्यकर्ता गिरफ्तार हुए हैं) पर मौन साधे हुए हैं। यह माकपा का पाखंड नहीं तो और क्या है। सुजीत की हत्या सिर्फ प्रतिशोध के चलते नहीं हुई, बल्कि उसे विशेष रूप से निशाना बनाया गया। साथ ही गांव में शाखा लगाने पर धमकी दी गई। १इस आक्रामकता की असली वजह माकपा से सुजीत का अलग विचार रखना थी। उसकी मौत सिर्फ एक मौत नहीं है। वह वास्तव में बौद्धिक जगत के लिए एक चुनौती भी है। इस घटना पर चुप्पी एक सोची-समझी रणनीति प्रतीत होती है, जो कि मुद्दे को और उलझाती है। राजनीतिक कारणों से इसकी निंदा नहीं की जा रही है, लेकिन इससे समाज में न केवल एक घातक रोग को बढ़ावा दिया जा रहा है, बल्कि उसे निर्दयी भी बनाया जा रहा है। आइए ऐसी घटनाओं की हम सब सार्वजनिक निंदा करें ताकि सिर्फ विचारधारा के कारण किसी सुजीत को अपनी जान न गंवानी पड़े।

❍

महिषासुर बलिदान दिवस: एक छद्म पुर्नव्याख्या

- राजीव रंजन प्रसाद

जेएनयू का महिषासुर स्वयं को नास्तिक मानने वाले वाम-समुदाय के मष्तिष्क की उपज है, यदि बारीकी से समझा जाये तो देश की सामाजिक दरारों को चौडा करने और साम्प्रदायिक जहर फैलाने की स्पष्ट साजिश के साथ इसे गढा गया है। बहुधा धार्मिक सम्प्रदाय काल्पनिक कहानियों, घटनाओं और परिस्थितियों को गढ कर आपस में नफरत और दंगे फैलाते रहे हैं, किंतु जब स्वयं को बौद्धिक और प्रगतिशील मानने वाला समुदाय ऐसा करने को उद्यत हो तो गंभीरता से पूरे प्रकरण को समझना विवेचित करना आवश्यक हो जाता है। जब बहस आरम्भ हुई है तो बेहतर है कि देश भर के लोग बारीकी से देखें-विवेचित करें कि पुरानी पुस्तक में वर्णित महिषासुर कौन है और जेएनयू का महिषासुर क्या है? इसके साथ ही साथ शोध और अभिव्यक्ति पर भी एक सार्थक बहस को यह प्रकरण खुला छोडता है और हमारे शिक्षाशास्त्रियों तथा विश्वविद्यालयों को भी आईना दिखाता है कि आप कैसे विद्यार्थी और कैसा समाज गढने चले हो?

जेएनयू का महिषासुर कौन है, इसे फॉर्वर्ड प्रेस पत्रिका ने पिछले दिनो पूरा अंक (फॉर्वर्ड प्रेस पत्रिका, अक्टूबर २०१४) निकाल कर स्पष्ट किया था। यद्यपि इस पत्रिका के लेखकों में भी यह विवाद है कि महिषासुर को यादव समाज का प्रतिनिधि माना जाये अथवा आदिवासी समाज का। मैनें विभिन्न संदर्भों में उस दौर में रहे भैंस पालक यादव समाज की जानकारी तलाशनी चाही किंतु एक भी उद्धरण नहीं मिला, एकलव्य से ले कर गुण्डाधुर तक के नायकों पर गर्व करने वाले आदिवासी समाज को भी एक गढी हुई कहानी में नायक तलाशने की आवश्यकता तो नहीं। जेएनयू की महिषासुर परिकल्पना में कई झोलझाल है। फॉरवरड प्रेस पत्रिका उसे बंगाल का राजा बताती है, लेकिन देश के अन्य क्षेत्रों में इससे जुडी मान्यताओं पर चुप रह जाती है। यह प्रचलित जन-मान्यता है कि महिषासुर एक समय मैसूर (महिसुर) का राजा था और दुर्गा द्वारा भीषण युद्ध में उसका वध जिस स्थल पर हुआ उसे चामुण्डा पर्वत कहा जाता है। हिमाचल प्रदेश का शक्तिपीठ नैनादेवी भी दावा करता है कि महिषासुर का वध वहाँ हुआ। झारखण्ड का भी दावा है कि चतरा जिले में तमासीन जलप्रपात के निकट महिषासुर का वध हुआ। छत्तीसगढ का भी महिषासुर पर दावा है जहाँ बस्तर के बडे डोंगर क्षेत्र में अनेक महिष पदचिन्हों को महिषासुर की कथा से जोड कर देखा जाता है और मान्यता है कि यहीं उसका वध हुआ। जहाँ इतनी मान्यतायें उपलब्ध हैं वहाँ फोर्वर्ड प्रेस के सर्वे सर्वा डॉ. सिल्विया फर्नान्डीज या कि इस पत्रिका के मुख्य सम्पादक श्री आयवन कोस्का बिना संदर्भ के भी कोई बात रखते हैं तो सवाल खडे किये जाने

चाहिये। अंतः यह साफ समझने के लिये कि निहायत गंदे उद्देश्य से और केवल लाल विचारधारा के प्रचार-प्रसार के निहितार्थ देवी दुर्गा को वेश्या दिखाने की साजिश करने वाले लोग चाहते क्या हैं उसे समझने के लिये जेएनयू के महिषासुर और दुर्गा-सप्तशती में वर्णित महिषासुर के वर्णनों को तुलनात्मक रूप से समझने की कोशिश करते हैं। यह समझना आवश्यक है कि जेएनयू के एक खास विचार-वर्ग ने देवी दुर्गा को वेश्या के बिम्ब मां ही क्यों चुना?

सप्तशती मे दुर्गा-महिषासुर कथा का प्रारभ होता है जब महिषासुर ने इन्द्र को पराजित कर दिया है और देवता विष्णु से मदद मांगने जाते हैं। बात कविता में कही गयी है अतः दुर्गा की उत्पत्ति और शक्ति की जो विवेचना इस में कृति में है वह शब्दशः देखे जाने पर बहुत ही अतिरंजित अथवा अविश्वसनीय लग सकती है। तथापि मैं दुर्गा सप्तशती के द्वितीय अध्याय को स्त्रीविमर्श का उद्धरण मानना चाहूंगा जहाँ एक वीरांगना स्त्री दुर्गा भीषण युद्ध में अपने शत्रु महिषासुर की बहुतायत सेना का संहार कर देती हैं। कविता कहती है कि देवता प्रतिवाद की तैयारी कर रहे हैं, देवी शस्त्रों से सज्जित हैं कदाचित इतनी बलशाली हैं मानों दस हाँथ हों, अनेक तरह के अस्त्र शस्त्र संचालन में दक्ष। महिषासुर देवताओं का दुस्साहस देख कर क्रोधित है और उसे फर्क नहीं पडता कि सामने से लडने वाली स्त्री है। उसका सेनापति चिक्षुर दुर्गा पर पहले आक्रमण करता है (श्रीदुर्गासप्तशत्याम, द्वितियोअध्यायः श्लोक ४०-४१)।

यह आक्रमण साधारण नहीं था साठ हजार हाथियों के साथ उदग्र नाम का महादैत्य, एक करोड रथियों के साथ महाहनु नाम का दैत्य, पाँच करोड रथी सैनिकों के साथ असिलोमा नाम का महादैत्य, हाथी व घोडों के दल बल के साथ परिवारित नाम का राक्षस, पाँच अरब रथियों के साथ बिडाल नाम का दैत्य तथा इस सबके साथ स्वयं महिषासुर भी कोटि कोटि सहस्त्र रथ, हाथी और घोडों की सेना से घिरा हुआ था और इन्होंने प्रथमाक्रमण करते हुए दुर्गा पर तोमर, भिन्दिपाल, शक्ति, मूसल, खडग, परशु और पट्टिश आदि शस्त्र फेंके - युयुधुः संयुगे देव्या खड्गैः परशुपट्टिशैरू। केचिच्च चिशिपुः शक्तिः केचित्पाशांस्तथापरे (श्रीदुर्गासप्तशत्याम, द्वितियोअध्यायः श्लोक ४८)। यह तथ्य समझने वाला है कि दुर्गा पर न केवल पहला आक्रमण महिषासुर की सेना ने किया अपितु पूरी शक्ति के साथ किया। महिषासुर की सेना, उसकी ताकत व संख्या का विवरण निश्चित ही अतिश्योक्तिपूर्ण है किंतु कविता में अलंकार का प्रयोग कदाचित वर्जित नहीं है। द्वितीय अध्याय इस युद्ध मे महिषासुर की पराजय का लोमहर्षक वृतांत प्रस्तुत करता है जिसमें कहीं भी दूसरा पक्ष छल करता नजर नहीं आता, किसी तरह के प्रेम अथवा प्रणय निवेदन का जिक्र नहीं है अपितु प्रत्येक पंक्तियाँ यह बताने के लिये लिखी गयी हैं कि एक स्त्री हो कर भी दुर्गा ने कुशल रणनेतृत्व किया और शत्रुपक्ष को पराजित किया।

दुर्गासप्तशती का तीसरा अध्याय महिषासुर के अनेक सेनापतियों तथा अंत में उसके ही वध का रुचिकर चित्रण है। इस अध्याय में दो प्रतीकों का युद्ध में बार बार उल्लेख आता है पहला है महिष (भैंस) तथा दूसरा है सिंह। महिष के प्रतिपल रूप बदलने का उल्लेख है किंतु सिंह के नहीं। सप्तशती के श्लोक कहते हैं कि अपनी सेना के नाश को देख कर महिषासुर ने भैंसे का रूप धारण कर लिया तथा किसी को धूथन से मार कर, किसी के उपर खुरों का प्रयोग कर के कुछ गणों को वेग से, कुछ

को सिंहनाद से, कुछ को निरूश्वांस वायु के झोंके से धराशायी कर दिया। कविता में लिखे गये दुर्गा-महिषासुर युद्ध के आखिरी कुछ हिस्से बहुत ही आश्चर्य में डालने वाले हैं। यह श्लोक देखें कि . सा क्षिप्त्वा तस्य वै पाशं तं बबन्ध महासुरम। तत्याज माहिषं रूपं सोऽपि बद्धो महामृधे। ततः सिंहोऽभवत्सद्यो यावत्तस्याम्बिका शिररू। छिनत्ति तावत्पुरुषः खड्गपाणिरदृश्यत (श्रीदुर्गासप्तशत्याम, तृतीयोऽध्यायः श्लोक २६-३०) अर्थात - युद्ध में स्वयं को लगभग पराजित देख कर महिषासुर ने भैंस का स्वरूप छोड कर सिंह का रूप धारण कर लिया। कुछ देर इसी तरह संघर्ष करने के पश्चात जब दुर्गा उसके गर्दन पर प्रहार करने को उद्यत हुई तो वह सिंह रूप छोड कर अपने पुरुष स्वरूप में आ गया जिसके हाथ में एक खड्ग था। यही नहीं बाद के श्लोकों में महिषासुर के हाथी और फिर पुनः भैसे के रूप में आ जाने का वर्णन भी मिलता है। भैसे और मनुष्य के बीच के स्वरूप अथवा अवस्था में होने के दौरान दुर्गा द्वारा महिषासुर का वध किये जाने का विवरण दुर्गासप्तशती के माध्यम से मिलता है। पुरानी पुस्तकों में इसके अतिरिक्त कोई भी अन्य संदर्भ, कहानी का दूसरा कोण अथवा वैकल्पिक दृष्टांत उपलब्ध नहीं है।

अब जेएनयू के महिषासुर पर आते हैं। एक काल्पनिक तथा अश्लील चित्र के नीचे विवरण देते हुए फॉर्वर्ड प्रेस पत्रिका लिखती है कि "सुरों ने सुन्दरी दुर्गा को असुरों के राजा महिषासुर की हत्या करने के लिये भेजा था इस छल से अनभिज्ञ महिषासुर ने संभावित आगमन की सूचना परिवारजनों को अग्रिम रूप से दे दी थी (फॉर्वर्ड प्रेस पत्रिका, अक्टूबर २०१४ अंक पृ-६)। आखिर इस संदर्भ का विवरण कहाँ से लिया गया है? सच यह है कि मूल उपलब्ध कथा के साथ कल्पनानुसार भयावह छेडछाड पत्रिका ने तथा चित्रकार ने नितांत बदनियती के साथ की है। आगे यह पत्रिका लिखती है कि दुर्गा द्वारा महिषासुर की छाती में खंजर उतारने के बाद उन्होंने उसके आवास में प्रवेश कर बडे पैमाने पर असुरों का संहार किया (फॉर्वर्ड प्रेस पत्रिका, अक्टूबर २०१४ अंक पृ-६)। दुर्गासप्तशती जिसे आधार मान कर सारी कथा लिखी, गढी और पुनः पुनः गढी जा रही हैं वह फॉर्वर्ड पत्रिका के कथन को झूठा बताती है। वास्तविक श्लोक है कि - "अर्धनिष्क्रांत एवासौ युद्यूहमानो महासुररू। तया महासिना देव्या शिरशिचत्त्वा निपातितरू" अर्थात आधा निकला होने पर भी वह महादैत्य देवी से युद्ध करने लगा तब देवी ने बहुत बडी तलवार से उसका मस्तक काट गिराया (श्रीदुर्गासप्तशत्याम, तृतीयोऽध्यायः श्लोक २६-३०)। अब बहुत बडी तलवार को फॉर्वर्ड प्रेस पत्रिका तथा उसके महान चित्रकार ने छोटा वाला छुरा यानि कि खंजर बना दिया और जहाँ सिर काटे जाने का विवरण है उसकी जगह छाती में खंजर उतारने की बात शातिराना तरीके से लिख तथा चित्रित कर दी गयी है।

दुर्गा-महिषासुर मिथक कथा का पाठ प्रेम आधारित छल पर नहीं कहा गया अपितु यह विशुद्ध युद्ध कथा है। यहाँ दो पक्ष लडे जिसमें एक स्त्री थी दूसरा असुर। स्त्री की विजय हुई व असुर मारा गया। किसी तरह का छल नहीं अपितु दोनो ही पक्ष पूरी सेना व क्षमता के साथ लडे और अंततः एक पक्ष की विजय हुई। चित्रकार ने महिषासुर से प्रणय निवेदन करती दुर्गा का जो चित्र बनाया है (फॉर्वर्ड प्रेस पत्रिका, अक्टूबर २०१४ अंक पृ-७) वह यदि किसी भी समाज अथवा पक्ष को भद्दा और आपत्तिजनक लगता है तो इसमे कोई आश्चर्य नहीं। पूर्वाग्रह से भरे लोग जो लिखते व रचते हैं उसमें अध्ययन अथवा तथ्य कम अपितु कल्पना का झोल तथा अनापशनाप बोल और

चटख रंगों में छिपी अश्लीलता अधिक होती है। पत्रिका इस बात को बहुत ही घटिया तरीके से लिखती है कि महिषासुर की हत्या के पूर्व दुर्गा ने छक कर शराब पी (फॉर्वर्ड प्रेस पत्रिका, अक्टूबर २०१४ अंक पृ-७)। फॉर्वर्ड नाम से प्रकाशित पत्रिका की प्रगतिशीलता से मेरा सबसे बडा सवाल कि आप स्त्री को कमतर आंकने की और बंधन में बांधने की वकालत क्यों करना चाहते हैं? क्या आपका मानना है कि स्त्री का शस्त्र पर, सुरा पर और स्वतंत्र जीवन पर कोई अधिकार नहीं? खैर स्त्री को क्या नहीं करना चाहिये की मंशा जताने के लिये जो चित्र प्रकाशित किया गया है वह निश्चित ही आपत्तिजनक है। दुर्गासप्तशती के तीसरे अध्याय का श्लोक ३८ है कि . गर्ज गर्ज क्षणं मूढ मधु यावत्पिबाम्यहम। मया त्वयि हतेअत्रैव गर्जिष्यंताशु देवतारू। अर्थात "तब क्रोध में भरी हुई दुर्गा उत्तम मधु का पान करने और लाल आँखें कर के हँसने लगी"। इस मधु की और अधिक पडताल करने पर ज्ञात होता है कि मधु का एक पानपात्र कुबेर ने दुर्गा को भेंट स्वरूप दिया था। मधु शब्द का अर्थ यदि सुरा भी निकाला जा रहा है तो क्या यह बात सही नहीं कि युद्ध क्षेत्र में यह घटना हो रही है न कि शयनकक्ष में।

महिषासुर प्रकरण पर राज्यसभा में वामदल अधिक तल्ख हो कर बहस से भागते हैं तो आश्चर्य नहीं। यह प्रसंग किसी एक विद्यालय के एक समूह का दिमागी फितूर भी नहीं क्योंकि पिछले कई वर्षों से अपनी गढी हुई काल्पनिक कहानी को देश-व्यापी बनाने की कोशिशे भी निरंतर होती रही हैं। यह अस्तिकों और नास्तिकों के बीच साम्प्रदायिक तनाव पैदा करने की कोशिश के तौर पर भी देखे जाने योग्य प्रकरण है, और इससे पहले कि वास्तव में ऐसी साजिशें कामयाब हों हमें अपने समाजशास्त्र की जडों को सद्भाव का पानी देना आवश्यक है।

❍

देश में कोई जनजाति महिषासुर की पूजा नहीं करती: विशेषज्ञ

दिल्ली के जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय (जेएनयू) में महिषासुर शहादत दिवस मनाए जाने को लेकर संसद में गरमा-गरमी के बीच झारखंड के एक जनजातीय विद्वान प्रकाश उरांव ने कहा है कि देवी दुर्गा ने जिसे मारा था और जिसे सब दानव के रूप में जानते हैं, वह भारत की किसी जनजाति के लिए प्रेरणादायी या पूज्य नहीं रहा है। झारखंड सरकार की संस्था ट्राइबल रिसर्च इंस्टीट्यूट (टाआरआई) के पूर्व निदेशक उरांव ने बताया कि सांख्यिकी संबंधी किसी भी किताब में महिषासुर से जनजाति के लोगों का कोई संबंध नहीं पाया गया है। पूर्व निदेशक ने कहा कि एक जानकार होने के नाते खुद जनजातीय समुदाय से होने के बावजूद उन्होंने ऐसा कभी नहीं सुना कि महिषासुर किसी भी आदिवासी समुदाय के लिए एक प्रेरणास्रोत रहा। उन्होंने कहा कि ऐसा लगता है कि यह कुछ लोगों का नया पैदा किया हुआ है। मैं झारखंड में ही पला-बढ़ा हूं। मैं जनजातीय हूं, लेकिन कभी नहीं सुना कि महिषासुर किसी भी जनजातीय समुदाय के लिए प्रेरणा है। उरांव ने कहा कि वास्तव में असुर एक जनजाति है, जिसका पेशा लोहा गलाना है। लेकिन उनका भी महिषासुर से कोई लेना-देना नहीं है। उन्होंने कहा कि जनजातीय लोग अहिंसक और भोले-भाले होते हैं।

दैनिक जागरण में प्रकाशित

जेएनयू पर विपक्ष का आत्मघाती रवैया

- उमेश चतुर्वेदी

क्या देश के किसी और विश्वविद्यालय में देश विरोधी नारा लगता तो वहां की स्थानीय पुलिस नारा लगाने वालों पर कार्रवाई के लिए सरकारी आदेश का इंतजार करती? क्या वहां का जिला मजिस्ट्रेट इन नारों की जानकारी पाते ही चुप बैठ जाता? क्या वहां देश विरोधी आवाज उठाने वाले लोगों के पक्ष में राजनीतिक दल सड़कों पर उतरते? क्या उस विश्वविद्यालय में के स्थानीय छात्र चुप बैठते? ये कुछ सवाल हैं, जिन्हें जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में नारे लगने के बाद हुई पुलिस कार्रवाई और उसके बाद शुरू हुई आत्मघाती राजनीति के बाद पूछे जा रहे हैं। जिस तरह आरोपी छात्रों के समर्थन में प्रमुख विपक्षी दल कांग्रेस और वामपंथी दलों ने सरकार के खिलाफ मोर्चा खोल दिया है, उससे ये सवाल कुछ यादा ही संजीदा हो गए हैं। वैसे भी वामपंथी दलों से ऐसे मसलों पर मौजूदा रुख से इतर की उम्मीद कभी रही ही नहीं है। जिन वामपंथी दलों ने १९६२ में चीन के हमले को सांस्कृतिक क्रांति बताया था, जिन्होंने १९७५ में आपातकाल का साथ दिया था, इतिहास के इतने बड़े मोड़ पर वे राष्ट्र के बजाय बाहरी ताकतों और लोकप्रिय सोच के खिलाफ खड़े थे, उनसे तो उम्मीद की भी नहीं जा सकती, लेकिन डॉक्टर राममनोहर लोहिया और जयप्रकाश नारायण की अनुयायी बनने का दावा करने वाले जनता दल यूनाइटेड ने जिस तरह जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में हुई पुलिस कार्रवाई को लेकर सरकार पर हमला बोला है, वह उन वोटरों के भी समझ के परे है, जिन्होंने इन दलों को संसद या विधानसभाओं तक पहुंचाया है, बिहार की सरकार बनाने का मौका दिया है। तो क्या यह मान लिया जाय कि आपातकाल के दौरान जनता दल यूनाइटेड के नेताओं ने लोकतंत्र बहाली के लिए कांग्रेस की तत्कालीन सरकार के खिलाफ मोर्चा खोला था, वह उनका गलत कदम था और चूंकि उस समय वे पोलिटिकली इनकरेक्ट थे, लिहाजा उसे पोलिटिकली करेक्ट कर रहे हैं।

भारतीय जनमानस को इन दिनों ऐसे कई सवाल मथ रहे हैं। जनमानस यह पूछ रहा है कि आखिर देश के करदाताओं के दिए पैसे पर चल रहा देश का एक संभ्रांत माना जाने वाला विश्वविद्यालय क्या सिर्फ इसलिए चल रहा है कि वह अपने करदाताओं की ही भावना का अनादर करे और उसकी मंशा के अनुरूप उसके ही नाश की पटकथाओं को अपने मनोरंजन के लिए चुने। याद कीजिए २०१० की जून की घटना को। छत्तीसगढ़ में नक्सलियों ने घात लगाकर केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल के ७६ जवानों को मौत के घाट उतार दिया था। तब जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में शौर्य दिवस मनाया गया था। याद कीजिए २०१२ को जब यहां महिषासुर दिवस मनाया जाना शुरू हुआ। भारतीय परंपरा में शिक्षा को लेकर दो अवधारणाएं रही हैं। पहली तो यह कि बिना बुद्धि जरो विद्या यानी बिना बुद्धि के शिक्षा का कोई मोल नहीं। दूसरी मान्यता रही है कि विद्या ददाति विनयं। यानी विद्या विनयशीलता को

बढ़ावा देती है। इसी की अगली कड़ी है कि विद्या विवाद के लिए नहीं होती, लेकिन वह जेएनयू ही क्या, जो पारंपरिक खांचों को स्वीकार करे। उसके लिए इन मान्यताओं का कोई मोल नहीं है। सबसे बड़ी बात यह है कि क्या इस शिक्षा से समाज को कुछ फायदा भी मिल रहा है। निश्चित तौर पर इस शिक्षा का नतीजा वितंडावाद फैलाने के तौर पर सामने आ रहा है। समाज के पैसे से चलने वाला तंत्र अगर समाज के खिलाफ हथियार की तरह ही इस्तेमाल हो तो इस तंत्र के औचित्य पर सवाल उठेंगे ही।

ब्रिटेन की राजधानी लंदन के हाइड पार्क को लोकतंत्र का सबसे बेहतरीन जगह माना जाता है, क्योंकि वहां कोई भी ब्रिटिश सरकार को गाली दे सकता है, वहां की सर्वपूय महारानी के खिलाफ अपशब्द कह सकता है। कई बार लोकतंत्र की पैरोकारी में जेएनयू की भी हाइड पार्क से तुलना की जाती है, लेकिन यह तर्क नकार दिया जाता है कि हाइड पार्क में सरकार को गालियां देने वाले सरकारी रहमोकरम पर जिंदा नहीं रहते। सरकारी फेलोशिप हासिल करना उनके लिए गारंटी नहीं है। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में आज के दौर में भी अगर किसी छात्र को कोई फेलोशिप हासिल नहीं हो पा रही हो तब भी विश्वविद्यालय का उस पर सालाना करीब दो लाख नौ हजार रुपये खर्च हो रहा है और जाहिर है कि यह रकम भारतीय करदाताओं के ही जेब से आती है। वैसे इस विश्वविद्यालय में ऐसे भी छात्र हैं, जिन्हें जूनियर रिसर्च फेलोशिप के तहत २८ से ३२ हजार रुपये प्रतिमाह तक छात्रवृत्ति मिल रही है। अगर वे इसे हासिल करने में नाकाम रहें तो उन्हें कम से कम आठ हजार रुपये की रकम तो मिल ही रही है। दिलचस्प यह है कि इस विश्वविद्यालय के कुछ प्रतिबद्ध छात्रों की विचारधारा, कॉरपोरेट के खिलाफ आंदोलन और राष्ट्र विरोध को लेकर सारी प्रतिबद्धता सिर्फ और सिर्फ विश्वविद्यालय की चारदीवारी में ही होती है। चारदीवारी से बाहर इनमें से कुछ छात्रों में से यादातर परले दर्जे के भौतिकतावादी होते हैं। विश्वविद्यालय में उन्हें नेस्कैफे का सेंटर नागवार गुजरता है, क्योंकि वह पूंजीवाद का प्रतीक है, लेकिन बाहर निकलते वक्त उन्हें बेनेटन की जींस और बगल के प्रिया सिनेमा कॉम्प्लेक्स पर महंगा डिनर, महंगी शराब और महंगी कॉफी पसंद है। यहां के कुछ छात्रों की प्रतिबद्धता का आलम यह है कि वे विश्वविद्यालय में लगातार अमेरिकी साम्रायवाद, कॉरपोरेट और उसकी व्यवस्था को गाली देते रहते हैं, लेकिन उनका असल मकसद उसी अमेरिकी धरती पर नौकरियां हासिल करना है? इसीलिए जेएनयू में एक कहावत जोरशोर से सुनाई जाती है- या तो अमेरिका या मुनिरका। यानी जो अमेरिका नहीं पहुंच पाए, वे अपने लिए जेएनयू के सामने स्थित शहरीकृत गांव मुनिरका में ठिकाना तलाश लेते हैं। पनीर खाकर पूंजीवाद को गाली देने वाले शैक्षिक तंत्र से देशविरोधी बयानों और देश के टुकड़े करने की उम्मीद के अलावा और कुछ की भी कैसे जा सकती है।

१३ दिसंबर, २००१ को संसद पर हुए आतंकी हमले में षड्यंत्रकारी के तौर पर दिल्ली विश्वविद्यालय के जाकिर हुसैन कॉलेज के प्रोफेसर एसआर गिलानी को सुप्रीम कोर्ट ने बरी कर दिया तो उन्हें जैसे एक आधार मिल गया- भारत को गालियां देने का और भारत के टुकड़े करने की मंशा के सार्वजनिक इजहार का। मजे की बात यह है कि उन्हें भारत सरकार की तरफ से सुरक्षा भी हासिल है। अगस्त २००८ में तो जंतर-मंतर पर उनकी अगुआई में उनके

समर्थक खुलेआम नारे लगा रहे थे-वी वांट आजादी। यानी उन्हें आजादी चाहिए। तब दिल्ली पुलिस के एक सिपाही की टिप्पणी थी, क्या हमारी मजबूरी है कि देशद्रोहियों को हमें सुरक्षा देनी पड़ रही है। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में हुई मौजूदा घटना के लिए असल जिम्मेदार यह गिलानी हैं। ऐसे में अब भारत सरकार को यह भी सोचना होगा कि क्या उसके ही सुरक्षा के दायरे में रह रहे व्यक्ति को भारत के टुकड़े करने की आजादी देनी चाहिए।

लेकिन इस सबके बीच सबसे यादा निराश राहुल गांधी ने किया है। यह ऐतिहासिक तथ्य है कि कांग्रेस का वामपंथी दलों के साथ ऐतिहासिक रिश्ता रहा है। कांग्रेस की शह पर ही वामपंथी दलों और बुद्धिजीवियों ने जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय को दिल्ली के बीचोंबीच एक ऐसे लालगढ़ के तौर पर विकसित किया, जिसे संभ्रांत दर्जा मिला। जहां के छात्र खुले विचारों के और स्वछंद माने जाते रहे। भारत विरोधी विचारधारा के प्रसार करते रहे। चूंकि अतीत में कथित सांप्रदायिक राजनीति के बरक्स इस विचारधारा और लालगढ़ का कांग्रेस इस्तेमाल करती रही इसलिए यहां पुलिस कार्रवाइयां नहीं हुईं, लेकिन कांग्रेस के दुर्भाग्य से भाजपा अब देश की प्रमुख शासक पार्टी है। इसलिए अब कांग्रेस को भी देशद्रोह के नारों से आपत्ति नहीं रही। राहुल गांधी का पुलिस कार्रवाई के खिलाफ विश्वविद्यालय में उतरना दरअसल आत्मघाती राजनीति की निर्णायक शुरुआत मानी जा सकती है। भविष्य में जिसका खामियाजा कांग्रेस को भुगतना पड़े तो हैरत नहीं होगी।

❍

जंतर मंतर पर उमड़ा राष्ट्रवादियों का हुजूम

हाथों में तिरंगा और मन में देशप्रेम की उमंग लिए हजारों की संख्या में देशप्रेमियों का हुजूम २१ फरवरी सुबह राजघाट से जंतर-मंतर तक पहुंचा। पूर्व सैनिकों की संस्था पीपल फार नेशन की ओर से आयोजित इस मार्च में कई संस्थाओं व महत्वपूर्ण हस्तियों ने हिस्सा लिया। वे देशप्रेम से ओतप्रोत नारे लगाते हुए जेएनयू में देशविरोधी नारेबाजी करने के आरोपियों पर कार्रवाई की मांग कर रहे थे। इस रैली में गायिका पद्मश्री मालिनी अवस्थी, पूर्व एडमिरल शेखर सिन्हा, एअर मार्शल पीके रॉय, एके उपाध्याय सहित सेना के कई पूर्व अधिकारियों ने हिस्सा लिया। राजघाट पर सुबह दस बजे ही भीड़ जुटने लगी थी। पुलिस की चाक चौबंद व्यवस्था में विभिन्न संगठनों ने सुबह ११ बजे यहां से एकता मार्च निकाला। वे हाथों में तिरंगे और वंदे मातरम, भारत माता की जय, हिन्दुस्तान जिंदाबाद, जो अफजल का यार है, वो देश का गद्दार है...जैसे नारों से लिखी तख्तियां लेकर जंतर-मंतर की तरफ जोशोखरोश से बढ़ रहे थे।

पूर्व एअर मार्शल पीके राय ने कहा कि आज इतने हुजूम को देखकर हमारी सेना का सीना गर्व से चौड़ा हो रहा है। हमने सोचा भी नहीं था कि देश से प्यार करने वाले लोग सिर्फ एक आवाज में सड़कों पर आकर हमारा साथ देंगे। मार्च में सक्षम संस्था से ७० दृष्टिबाधित और ११० शारीरिक रूप से अक्षम डीयू के छात्रों ने हिस्सा लिया। राष्ट्रीय संस्था संस्कार भारती से जुड़े लोगों ने भी हिस्सा लिया। राजघाट से शुरू हुआ मार्च जंतर-मंतर पर जाकर खत्म हुआ।

साभारः भास्कर

दैनिक जागरण में प्रकाशित लेख

जोखिम बढ़ाने वाली आजादी

– दिव्य कुमार सोती

अभिव्यक्ति की आजादी की मनमानी व्याख्या कर रहे लोगों को अमेरिका और यूरोप से सीख लेने की जरुरत है।

9 फरवरी को जेएनयू में छात्रों के एक गुट ने जो नारे लगाए उनको सुनने वाला कोई भी आम भारतीय शायद ही यह मान पाए कि इन नारों का उद्देश्य राष्ट्रविरोधी उन्माद उत्पन्न करना नहीं था। परंतु उदारवादी बुद्धिजीवियों के एक वर्ग को इस सब में कुछ गलत नजर नहीं आ रहा है। उनके अनुसार यह छात्र बस अपनी राय व्यक्त कर रहे थे और भारतीय संविधान इसकी पूर्ण आजादी देता है। फिर वे इन छात्रों के बचाव में एक कदम और आगे जा कर तर्क देते हैं कि अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय ने तो अमेरिकी झंडे को जलाने को भी अभिव्यक्ति की आजादी माना है। इसके अलावा कुछ अन्य तर्क हैं जिनके अनुसार यह नारे अपरिपक्व छात्रों द्वारा की गई एक बचकानी शरारत थी जिसे देश को नजरअंदाज कर देना चाहिए। क्या वास्तव में यह सब तर्क सही हैं? १किसी भी देश का संविधान शून्य में नहीं उपजता और न ही वह राष्ट्र की सुरक्षा के प्रति उदासीन हो सकता है। विभाजन की विभीषिका, जो लाखों लोगों को लील गई थी, से उबर रहे भारत के संविधान निर्माता राष्ट्र की एकता, अखंडता और स्थिरता को जोखिम में डालने वाली अभिव्यक्ति की आजादी के दुष्परिणामों से भली भांति परिचित थे। यही कारण है कि भारतीय संविधान का अनुच्छेद १९(२) राज्य को राष्ट्रीय सुरक्षा के हित में आपराधिक कृत्यों के लिए उकसाने वाली अभिव्यक्ति पर रोक लगाने का अधिकार देता है। इसी सच्चाई को ध्यान मे रखते हुए सुप्रीम कोर्ट ने राष्ट्रीय ध्वज को जलाने को अभिव्यक्ति की आजादी के तहत मानने से साफ इन्कार कर दिया था। ९ फरवरी को जेएनयू परिसर में लगे नारे सरकारी नीतियों से असहमति नहीं जता रहे थे, बल्कि राष्ट्र के खिलाफ हिंसा के लिए उकसाने वाले थे। 'भारत की बर्बादी तक जंग रहेगी' असहमति नहीं, बल्कि देश और देशवासियों के विरुद्ध युद्ध का खुला आह्वान था। अगर छात्रों का यह गुट सुप्रीम कोर्ट द्वारा संसद हमले के मामले में अफजल गुरु को दिए गए मृत्युदंड को सही नहीं मानता था तो उस फैसले की बिंदुवार समालोचना कर सकता था। ये लोग उस फैसले की कानूनी खामियों को बताने वाला एक शोधपत्र प्रकाशित कर सकते, कोई सेमिनार कर सकते थे। भारतीय संविधान अवश्य ही सुप्रीम कोर्ट के फैसले से असहमति जताने और उसकी समालोचना करने की आजादी देता है। पर 'अफजल हम शर्मिंदा हैं, तेरे कातिल जिंदा हैं' समालोचना नहीं थी। यह साफ तौर पर अफजल को सजा सुनाने वाले न्यायाधीशों और उसकी दया याचिका ठुकराने वाले भारत के राष्ट्रपति के प्रति हिंसा के लिए उकसाने का प्रयास था।

इन नारों को असहमति का प्रदर्शन बताकर इन छात्रों का बचाव कर रहे लोग असहमति और उकसावे के फर्क को नहीं समझ पा रहे हैं। आप सरकार की माओवादियों के प्रति अपनाई गई सैनिक नीति से असहमति जता सकते हैं, उसके विरोध में प्रदर्शन कर सकते हैं पर जब आप माओवादियों द्वारा सीआरपीएफ के ७६ जवानों की हत्या पर खुशी का इजहार करते हैं तो वह असहमति नहीं, आतंकी हमलों का महिमामंडन है। जेएनयू में छात्रों का एक गुट यह भी कर चुका है। १अमेरिका में राष्ट्रपति को धमकी देना और उनके विरुद्ध हिंसा भड़काने का प्रयास करना दंडनीय अपराध है। २००७ में अमेरिका के एक विश्वविद्यालय मे भारतीय मूल के शोधार्थी विक्रम बुद्धि को अमेरिका द्वारा इराक पर हमले की अलोचना करते हुए आम लोगों से अमेरिकी राष्ट्रपति पर हमला करने की अपील करने के कारण सजा हो चुकी है। अमेरिकी संविधान राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए खतरा पैदा करने के प्रयासों को अभिव्यक्ति की आजादी नहीं मानता और इस प्रकार की गतिविधियों पर प्रतिबंध लगाने की अनुमति देता है। अभिव्यक्ति की आजादी पर इस प्रकार की रोक बेहद उदार यूरोपीय देशों में भी है। ११ सितंबर के आतंकी हमलों के दो दिन बाद फ्रांस में बास्क अलगाववाद की ओर रुझान रखने वाली एकेटजा पत्रिका में काटरूनिस्ट डेनिस ल रॉय का बनाया एक कार्टून प्रकाशित हुआ था जिसमें वर्ल्ड ट्रेड सेंटर से टकराते विमानों की तस्वीर के नीचे लिखा था, हम सबने इसका सपना देखा था, हमास ने यह कर दिखाया। बेहद उदारवादी व्याख्याओं के लिए जाने जाने वाले यूरोपीय मानवाधिकार न्यायालय ने ल रॉय को आतंकी कृत्यों को सही ठहराने का दोषी पाते हुए टिप्पणी की कि यह काटरून आतंकियों द्वारा बेगुनाहों की हत्या को सही ठहराने का प्रयास था और अलगाववादी हिंसा से ग्रसित बास्क इलाके में गंभीर सुरक्षा चुनौतियां पैदा कर सकता था। इसी प्रकार इंग्लैंड का कानून प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से किसी आतंकी या हिंसात्मक घटना के समर्थन या महिमामंडन करने को दंडनीय मानता है। यूरोपीय देशों ने अभिव्यक्ति की आजादी का दुरुपयोग रोकने के लिए कड़े कानून बनाए हैं। भारत आजादी के बाद से ही अलगाववादी आतंकवाद से जूझता रहा है। भारत की बर्बादी की कसमें खाने वाले इन छात्रों को भले ही भारत की अखंडता और सुरक्षा में दिलचस्पी न हो, पर आतंकवाद की विभीषिका डोल रहे भारत के आम नागरिकों को अवश्य है। असीमित अभिव्यक्ति की आजादी भारत के राष्ट्रीय हितों के लिए बेहद गंभीर स्थिति पैदा कर सकती है। अगर हम अभिव्यक्ति की आजादी के नाम पर भारत की बर्बादी वाले नारों की अनुमति देंगे तो पाकिस्तान में हाफिज सईद और मसूद अजहर की रैलियों पर कैसे आपत्ति जता सकते हैं?

❍

आईचौक.इन पर प्रकाशित लेख

महिषासुर के 'आधुनिक मानस-पुत्र'

- पीयूष कुमार दूबे

जेएनयू प्रकरण पर लोकसभा में हो रही चर्चा के दौरान बोलते हुए मानव संसाधन विकास मंत्री स्मृति ईरानी ने देश में वामपंथी ब्रिगेड द्वारा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के दुरूपयोग से सम्बंधित कई तथ्य प्रस्तुत किए, जिनमे से एक अत्यंत महत्वपूर्ण तथ्य जेएनयू में मनाया जाने वाला 'महिषासुर शहादत दिवस' और इस देश की बहुसंख्य लोगों द्वारा माँ के रूप में पूजित पौराणिक पात्र देवी दुर्गा के लिए 'वेश्या' जैसे अश्लील विशेषणों के प्रयोग से सम्बंधित है। हालांकि यह तथ्य एकदम नया नहीं है क्योंकि, देश की राजधानी दिल्ली में रहने वाले कुछेक लोग इन बातों से जरूर परिचित होंगे मगर, देश की बहुसंख्य आबादी तो ऐसी बातों के विषय में सोच भी नहीं सकती। देश के किसी भी क्षेत्र और जाति के लोग हों, उनके लिए दुर्गा एक उपास्य देवी और शक्ति की प्रतीक हैं, जो संसार को कष्ट देने वाले महिषासुर और उसके जैसे अनेक दुष्टात्माओं का अंत करने के लिए समय दर समय प्रकट होती रही हैं। लोगों की यह मान्यता पूरी तरह से भारतीय पौराणिक आख्यानों जो दुर्गा-महिषासुर चरित्र का प्रमुख स्रोत रहे हैं, पर आधारित है।

दरअसल हमारे पुराणों में यह कथा है कि महिषासुर नामक दैत्य जिसकी उत्पत्ति पुरुष और महिषी (भैंस) के संयोग से हुई थी, ने तप करके ब्रह्मा से यह वर प्राप्त कर लिया कि उसे कोई न मार सके सिवाय स्त्री के। फिर उसने समस्त देवताओं को पराजित कर उनके भवनों पर अपना आधिपत्य जमा लिया और देवता चूंकि पुरुष थे इसलिए वर के प्रभाव के कारण उसे मार नहीं सके। तब सभी देवताओं ने अपनी शक्तियों को एकत्रित कर एक सर्वशक्तिमान देवी (स्त्री) को उत्पन्न किया, जिनने महिषासुर को काफी समझाया किन्तु जब वो न माना व कामातुर हो उनसे विवाह प्रस्ताव करने लगा तो विवश हो उसका वध किया। फिर कालांतर में यही देवी अपने कर्मानुसार दुर्गा, काली आदि अनेक नामों से प्रसिद्ध हुईं। देवी और महिषासुर का युद्ध नौ दिन तक चला था और क्वार मॉस की दशमी तिथि को देवी ने महिषासुर का वध किया था, जिसके उपलक्ष्य में देश में आज क्वार महीने में नवरात्र आयोजित कर दशमी तिथि को विजयदशमी के रूप में मनाया जाता है।

अब इसी पौराणिक आख्यान के पात्रों को उठाकर जेएनयू वासी लाल सलामी प्रज्ञाचक्षुओं द्वारा एक नए हवा-हवाई इतिहास को गढ़ा गया है कि महिषासुर एक दलितोद्धारक, न्यायप्रिय और जनप्रिय राजा था, जिसको सवर्णों द्वारा प्रेरित एक चरित्रहीन स्त्री दुर्गा ने छल से मार दिया। इस प्रकार जब देश नवरात्र मनाता है तो ये गोमांस की दावत का आयोजन करने लगते हैं और विजयदशमी को ये अपने मानसिक पिता महिषासुर की शहादत के रूप में आयोजित करके बैठ जाते हैं। अब ये लाल सलामी मूर्ख देवी दुर्गा के लिए 'वेश्या' जैसे घृणित विशेषणों

का प्रयोग करते हैं, इनका पूज्य महिषासुर भी यही करने की नाकाम कोशिश किया था। अर्थात कि इनकी और महिषासुर की मानसिकता एकदम समान रूप से स्त्री-विरोधी है, यह देखते हुए इन्हें 'महिषासुर के आधुनिक मानस-पुत्र' कहना अत्यंत समीचीन ही होगा।

हालांकि हर बात में दूसरों से तथ्य और प्रमाण मांगने वाले ये महिषासुर के मुट्ठी भर आधुनिक मानस-पुत्र अपने इस मनगढ़ंत और वाहियात इतिहास के विषय में आजतक कोई ठोस प्रमाण नहीं दे सके हैय बस हिटलर के प्रचार मंत्री गोयबल्स की तरह इस झूठ को बार-बार रट-रटकर सही साबित करने की नाकाम कोशिश में लगे रहते हैं। यहाँ तक कि इसपर झूठों, कपोल-कल्पित वाहियात तथ्यों और कुतर्कों से भरी पत्रिका तक निकाल चुके हैं। वैसे, इनके इस बौद्धिक कुकृत्य का विडंबनात्मक पक्ष ये है कि एक तरफ तो ये भारतीय पौराणिक इतिहास को मिथक और कपोल-कल्पित कहके खारिज करते हैं और दूसरी तरफ उसी से दुर्गा-महिषासुर जैसे चरित्रों को उठाकर मनगढ़ंत ढंग से पेश भी करते हैं। यह देखते हुए कह सकते हैं कि जैसे महिषासुर समय और आवश्यकतानुसार रूप बदल लेता था, वैसे ही उसके ये आधुनिक मानस-पुत्र भी अवसर देखकर चेहरे बदलने की कला में पूरे माहिर हैं।

वे कहते हैं कि यह इस पौराणिक आख्यान की दलित व्याख्या है। ऐसे में मेरी इन महिषासुर-पुत्रों से गुजारिश है कि इस देश के शहरी इलाकों से लेकर दूर-दराज के ग्रामीण इलाकों तक कहीं भी दलितों से अपनी इस तथाकथित 'दलित-व्याख्या' की चर्चा करके जरा इसकी जन-स्वीकार्यता की जांच कर लेंय दावा है कि इनके इस नवीन इतिहास को सुनने के बाद शायद ही कोई दलित ऐसा होगा जो इनको गरियाता हुआ अपने दरवाजे से न भगा दे। लात-जूते पड़ जाएं तो भी आश्चर्य नहीं। सच्चाई यही है कि इस देश की दलित-सवर्ण आदि कोई भी जाति हों, सबके लिए दुर्गा ही अलग-अलग रूपों में परम पूजनीय हैं न कि महिषासुर! मगर, यह बात दिल्ली के जेएनयू में बैठकर देश के बहुसंख्य दुर्गा भक्त लोगों के टैक्स के पैसे से प्राप्त सब्सिडी पर पढ़ रहे महिषासुर के इन आधुनिक मानस-पुत्रों को समझ में नहीं आ सकती क्योंकि, इन्हें इस देश और इसके सभी जाति-धर्म के वासियों की एक प्रतिशत भी समझ नहीं है। इनकी समझ का दायरा इनके लाल सलाम की बजबजाहट से शुरू होकर कभी महिषासुर को अपना 'वैचारिक बाप' तो कभी अफजल गुरु जैसे देशद्रोही दरिंदों को अपना जीवनादर्श मानकर खत्म हो जाता है।

स्मृति ईरानी के वक्तव्य के बाद कांग्रेस-वामदल आदि इनके राजनीतिक संगठनों की तरफ से तर्क यह दिया गया कि पूजा तो देश में कई एक जगहों पर रावण की भी होती है, यह सबकी अपनी-अपनी श्रद्धा का विषय है। पर अपनी दो कौड़ी की राजनीति में अंधे हो रहे इन पतित नेताओं को कौन समझाए कि बेशक सबकी अपनी-अपनी श्रद्धा होती है लेकिन, उसका ये अर्थ नहीं कि किसी और की श्रद्धा का अपमान किया जाय। वे बताएं कि देवी दुर्गा के लिए वेश्या जैसे शब्दों का प्रयोग करना कौन सी श्रद्धा है? आप बेशक महिषासुर को पूजिए लेकिन, माँ दुर्गा जो देश की बहुसंख्य आबादी के लिए प्राचीन काल से परम पूजनीय रही हैं, के अपमान का आपको कोई अधिकार नहीं। फिर भी, अगर आप अपनी बातों को लेकर इतने

ही प्रतिबद्ध हैं तो हिम्मत दिखाइये और पश्चिम बंगाल जो एकमात्र ऐसा राज्य है जहाँ अभी आपके वाम का कुछ राजनीतिक वजूद शेष है, की राजधानी कलकत्ता की सड़कों पर जाकर जरा अपने इस इतिहास का एक वाचन करके देखिये तो कि कितनी स्वीकार्यता है इसकी? देश में और सब जगहों से तो आप खारिज हो ही चुके हैं, कलकत्ता के कानों में भी जिस दिन आपके इस इतिहास का स्वर गया उस दिन वहां से भी आपका बचा-खुचा सूपड़ा साफ हो जाएगा। इसके बाद आराम से जेएनयू में बैठकर महिषासुर के आधुनिक मानस-पुत्र होने का अपना कर्तव्य निभाते हुए उसकी शहादत पर गर्वित होइएगा, विलाप करियेगा या मन करे तो अपना सिर धुनियेगा।

वामपंथी दलों के दोहरे चरित्र को उजागर करते हुए रोहित वेमूला ने अपनी मौत के कुछ ही दिनों पहले सीताराम येचुरी को सम्बोधित करते हुए पोस्ट लिखा था। जिसमें रोहित ने उन पर दलित विरोधी होने का तथ्यात्मक आरोप लगाया था।

Rohith Vemula
about 3 months ago

His Highness Mr.Yechury talking about Reservations in Private Sector at the constitution day session is funny, to say in politest way. When he was delivering a talk in HCU, he told that 'If his party finds eligible Dalit leaders, they would be sure taken into CPI(M) politburo', when questions were raised at the absence of Dalits in it for 51 years now.

While he said it, he must have pronounced the entire psyche of the party. There is still a 'search' of talent in Dalits according to him. And now he wants reservations in private sector. I am of this doubt that Yechury sees his party as a 'private' agency. And he is waiting until this amendment is made so that he would convince his 'party' to take Dalits into leadership. or he is just of the feeling that private sector will be damaged automatically if once industries are compelled to take Dalits into their teams, as the 'Savarna' bosses (everywhere) wouldn't be preferring to do so.

While the comrades are having orgasms hearing him speaking of reservations in private sector, the common Dalits are upset with the track record of the 'advocate'. When was the last time we have seen CPI(M) arguing for something and achieving it successfully at national level????

This is the problem when people like Yechury talks about reforms 'economically' 😬 . They will always be short of sense.

I hope comrades would have atleast a session dedicated to understand what Marx meant when he borrowed the sentence "From each according to their ability, to each according to their need" for his famous book. ("Need" , don't confuse it with "work") It is a deliberate, immodest blunder from the left side for remaining blind to the need of Dalit leaders in the Indian society.

Published in dailypioneer

CLASSIC CASE OF DOUBLESPEAK

– Anirban Ganguly

I shall begin with a prefatory observation or point. US Ambassador Richard Verma, who has the habit of shooting of his mouth in a most un-diplomatic ungraciousness, will perhaps agree with most of us when we say that authorities at Harvard University or the University of Pennsylvania would not be particularly welcoming of the idea of holding a mashaal juloos - torch march - commemorating the 'martyrdom' of 'Shahid' Osama bin Laden. So obsessed was the US with Bin Laden that they shot him through the head and dumped his body in mid sea.

Instead of joining issues with the Modi administration and hectoring on how to handle dissent and free speech - an act which is, in any case, beyond his diplomatic mandate - Ambassador Verma may rather read John Kenneth Galbraith's biography and take inspiration from how an ideal US Ambassador ought to conduct himself or herself in the Indian milieu.

On a positive side, as part of an affirmative action, Jawaharlal Nehru University's School of International Studies or School of Social Sciences, that Mecca of dissent and free speech, may consider inviting Ambassador Verma to deliver a keynote on the origins, evolution, enactment and content of the Patriot Act (Uniting and Strengthening America by Providing Appropriate Tools Required to Intercept and Obstruct Terrorism Act). It would be a hugely beneficial public exercise.

Tapasi Mallik, the 18-year-old Dalit girl who resisted her family's land from being grabbed in Singur in 2006, was beaten, raped and her half-burnt body tossed into the fields by Communist Party of India (Marxist) lumpens and harmads who were out to suppress and arrest the increasingly 'bourgeois' habits of the proletariat.

Mallik was the victim of the CPI(M)'s violent and inhuman politics in the same way Rohith Vemula had become a victim of the communist Students' Federation of India's subversive brand of politics. One of Vemula's last Facebook post indicates how deeply wounded he was at being turned into a pawn by the SFI in its dialectical politics of violence and subversion. In fact, it was the CPI(M)'s brand of politics that essentially drove Vemula to despair and death.

But then, this is the brand of politics that the CPI(M) and the Left and ultra-Left fronts and militia have always practised in India. Subversion, violence, subterfuge and fascist tactics have always been the handmaidens or chosen tools of left politics in India. The Democratic Students' Union and the All India Students' Association, in line with the CPI(M) and the Communist Party of India, have, in fact, patronised, for long,

the separatist brand of politics - A politics which denationalises, deracinates and generates disgust in one's civilisational moorings and origins.

As religious and political activist Sita Ram Goel articulated it, "It is natural and inevitable that communism should come into conflict with positive nationalism in every country. India cannot be an exception. By positive nationalism we mean a nationalism which draws its inspiration from its own cultural heritage and socio-political traditions. Such a nationalism has its own way of looking at world events and evaluating the alignment of world forces. Such a nationalism is guided by its own past experience in safeguarding its interests and pursuing its goals." For a political ideology which has always derived inspiration and direction from extraneous elements and forces, "positive nationalism" has always been the resisting rock. ts and developments at the prestigious and leading JNU also brings to mind Goel's assessment of the basic duplicitous "tactics" adopted communists of all hues in India. "Communism in India", he argued, has developed a language "which George Orwell has described as doublespeak. In this language the traitorous and totalitarian forces represented by the communist movement are presented as patriotic and democratic forces, collaborators with communism as progressive people, positive nationalism as Hindu communalism and chauvinism." Many people, pointed out Goel, "do not know how to decipher this doublespeak and are, therefore, trapped by it".

The situation in JNU and its exacerbation by a section of students and teachers is a classic case of doublespeak. The cry of "criminalising dissent" is essentially a classic doublespeak to cloak the attempt to legitimise traitorous attitude and unpatriotic acts. In this doublespeak and double-act a section of the JNU teachers have actively colluded and misguided young minds and taught them, not their mandated subjects, but rather the art of spiting India.

When professor Kamal Mitra Chenoy bleats inanities on how the Rashtriya Swayamsevak Sangh and the BJP are carrying out their "fascist" agenda in JNU, it is again a case of doublespeak where the bleating intellectual is actually trying to hide his own history of kowtowing to separatists and his advocacy of secessionism and India's vivisection.

A select group of professors at JNU have always advocated and promoted separatism of all kinds in India. It is these elements who are at the forefront today in trying to defend those who have raised slogans calling for the break-up of India.

A survey of the various statements that these professors and intellectuals have made over the years reveal a disturbing pattern - they have sided always with those sections opposed to India's unity and integrity, have echoed the demands made by these groups and have openly advocated secessionism and violence, challenging India's constitutional framework.

These professors have also actively participated in conference junkets that were organised by fronts/groups with the intention of championing secessionism in India. It would be worthwhile to look at some points from the plethora of material that has, fortunately, come to light.

Published in dailypioneer

UNIVERSITIES BECOMING INCUBATORS OF JIHAD VIRUS

—Balbir Punj

When, under the cover of free speech, elite institutions such as the Jawaharlal Nehru University, become breeding grounds for a vile ideology, it's the state's moral responsibility to intervene and draw the line

While the media was excited about the events at Jawaharlal Nehru University, an important event in Pampore in Kashmir was swept under the carpet. In Pampore, Pakistan-trained terrorists infiltrated a Government building, took hostages as they hit hard at the security forces, killing two senior Army officers and several jawans as they settled into a long-drawn struggle.

Now, such incidents in Kashmir have become common enough and may not deserve screaming headlines. But this time there was a speciality that the media, by and large, seemed to ignore. As the Army was seeking to flush out terrorists from the building and also rescue the civilians trapped inside, hundreds of agitators lined up across the building, separated from the action spot only by a rivulet.

The mob had wanted to rush to the encounter site and form a human wall to protect the militants from the Army's assault. When the police stopped them, they started shouting slogans hailing Pakistan and running down India. As police used teargas shells to keep the stone pelting mob at bay, a mosque nearby used loudspeakers to supplement the anti-India tirade.

Is the Pampore incident anyway different from what happened in JNU recently? What happened in JNU was Step One: Hailing terrorists as 'heroes'. The Army in Pampore witnessed Step Two: A motivated crowd willing to risk its own life to save its 'heroes'. The third and final step which gets enacted every other day in one or the other part of the globe is that some of the faithfuls emulate their 'heroes' and end up as terrorists or suicide bombers!

This is one of the several recipes the masterminds of terror use to transform

common people into killers. This step by step process exposes how the*jihadi* mental make-up subdues every other consideration among people. Impressionable minds are fed a concoction of class war or religion or both. The right to freedom of expression is being used to create a mindset that will destroy this very value for good. Remember, neither any Islamic society nor a communist one allows its citizens luxuries such as free speech.

In fact, JNU students' championing of 'freedom' is limited to freedom for them to decry the country, even to the extent of hailing convicted terrorists and chanting slogans in support of the India's arch rival. If one section of JNU students have been brainwashed into anti-India sloganeering, the other section should also have the right to expose what it considers as 'anti-national' on the same campus.

But when the other group of students raised slogans countering anti-nationalism, they were condemned as communal and fascist. This is an attempt to paper over the fact that communist ideology is most opposed to free speech. In communist China, dissident writers have been jailed, tortured and prevented from speaking or writing freely. In fact, one of them — a blind one at that — was heroic enough to climb the walls of his prison-home and reach out to the US Embassy. The JNU students' so called clamour for freedom includes euologising Maoists, communists who themselves suppress all freedom in the jungles of Bastar and elsewhere, where they are run parallel Governments.

It is claimed that universities should be allowed to remain breeding grounds of new and conflicting ideas to irrigate the stream of democracy. No one can quarrel with that proposition. But when in the seat of learning, from where ideas in governance and progress should emerge, slogans praising terrorists, terrorism and ideologies that promote mass killings arise, is that a desirable development?

After all how does an entire community begin to believe that it has the exclusive right to divinity, take up arms against all and sundry, and impose its will on other communities — even if that means mass elimination of anyone, even innocents? This has already happened across the world from the cityscape of Paris (where the world revisited the horrors of 26è11 last year) to the jungles of Bastar (where the entire State leadership of the Congress was eliminated in particularly deadly Maoist strike) to the urban centres of Pakistan (where Islamists killed school children and university students on a mass scale).

The*jihadi* virus that breaks down the conscience has its origin somewhere. And when elite institutions like JNU become incubators of such virus, in the

name of free speech, should not the state intervene and draw the line somewhere?

How unreasonable the leaders of the Left and the 'secular' movement have been, is exposed by the JNU incidents. The Left demands that the state's strong arm — that is the police — should be kept out of university campuses, except when requested by the vice-chancellor. But what happens in situations when criminals and terrorists are praised and the demand rises to break up the nation? Note also that the Left, which otherwise opposed police presence on campus, wants the police to intervene by forcing itself in court premises without the judge's permission, when its own student leaders are manhandled by their opponents.

Across history, there are innumerable instance of such happenings. Notably the French revolution, with the commendable slogan of 'Liberty, Equality and Fraternity' degraded into such chaos and indiscriminate execution of opponents that Napolean's dictatorship was considered a blessing.

Various communist revolutions ended in bloodbaths of innocents as well as of other leaders be it during the Stalin era in Russia, the Cultural Revolution in China, or in the killing fields of Cambodia. In all this, tens of millions lost their lives, as recorded by history, and entire communities have had to flee. Right now, those who euologise terrorists like Afzal Guru and secessionists like SAR Geelani are seemingly blind to what is happening Lebanon-Syria-Iraq — the brutality, the massacres, the mass executions and the enslavement of women.

Reports from behind the bamboo curtain in North Korea expose horrible executions under the miasma of a communist revolution. Will the self-styled leaders in JNU, who sing hallelujahs to Afzal Guru andèor to Mao Tse-Tung, and chant Naxal ideology, take responsibility for the mass deaths happening in West Asian crescent or in the jungles of east India? Why is there a huge gap between what elite students learn from history and the viruses they incubate in the name of freedom of expression?

❍

Published in dailypioneer

HARVESTERS OF DEATH AS SAVIOURS

— Prakash Shah

When globalised by extension beyond Euro-American contexts, exercises of providing moral justifications for crimes get distorted. At the same time, we already have much of the necessary equipment to justify the criminal actions of terrorists

Media and academic opinion, within India and abroad, apparently supports the demonstrating JNU students and condemns their arrests and suspensions. One prominent petition, by over 400 academics mainly in the US, Canada, the UK and India, with JNU alumni, describes the arrests as illegal and unconstitutional. To derive conclusions about legality, these detractors must have information to which only the JNU administration, the police or Government could be privy. Another petition has been signed by 133 academics, again mainly based in the US, Canada, the UK and India, including Noam Chomsky, Charles Taylor, Judith Butler, Sheldon Pollock and Orhan Pamuk. Condemning the police action and JNU's Vice Chancellor for not speaking out,it describes JNU as "the most prominent university in the country in the eyes of the academy all over the world". Signatories seem oblivious to the fact that JNU ranks nowhere in the Times Higher Education world university rankings and is similarly absent from other international rankings. When present, Indian institutions figure well behind their counterparts elsewhere — a hint of the parlous state of higher education in India.

Let us now try to view the JNU events in a wider frame. Imagine that a student group in the UK, say at the prominent Oxford University, went around praising the killers of the soldier Lee Rigby, who was murdered in London in broad daylight by two jihadis in 2013. The murder was condemned in the international Press and by British Muslim leaders. Imagine that a group of Oxford students shout slogans to the effect that, in place of the imprisoned murderers, many more would rise. Further, the students audibly announce Britain's destruction into pieces. How would the authorities and the police respond? Quite possibly they would feel compelled to stop such a meeting and take the leaders into custody. They could select from among many UK laws,

including those covering public order or terrorism, to base arrests. For example, Section 12 of the UK's Terrorism Act 2000 criminalises a person who "arranges, manages or assists in arranging or managing a meeting which he knows is …to support a proscribed organisation".

Most likely there would be public outrage and disgust and, surely, large sections of the media would condemn, not the police or the Government of the day but the demonstrators. Many would legitimately question why university students demonstrate in support of terrorism. It is hard to imagine that student demonstrations ripple out across the UK and harder still to imagine they would be supported by academics. One cannot imagine a group of international scholars lending their names to petitionscriticising the police or the university administration. Substitute for Lee Rigby's murderers, those who helped the perpetrators of the 9è11 attacks in the US; or those who attacked the Canadian Parliament in 2014; or those responsible for the November 2015 attacks in Paris. While details may vary, the tenor of responses would not differ much.

British universities are already being enlisted for detecting radicalisation among youngsters. A new legal duty under the Counter-Terrorism and Security Act, 2015, obliges universities to have "due regard to the need to prevent people from being drawn into terrorism". While there is some dissent on grounds of academic freedom, universities have broadlycomplied. There is nothing like the ***tamasha*** we witness in India.

Those suggesting that the JNU administration's and police actions are unlawful and unconstitutional, are not waiting for judicial proceedings to uphold or strike down the charges. They imply that the legal process in India deserves no respect and that law enforcers are culpable for holding justifiers of terrorism to account. This seems the very opposite of what would be expected of any responsible state in the world. Why is India treated differently by its own and external academic community?

It reflects a structure of thinkingsoaked in since colonial times whereby large parts of the intelligentsia learn and teach a view of India as a backward, immoral and degenerate culture. This framework for viewing India is structured by the Christian-Orientalism of yesteryear which continues in secularised form beyond decolonisation. The not insignificant number of Indian origin academics who enjoy higher education in the West perform a vital role in its propagation. Having imbibed the latest distorted versions of India studies, they are prominent among petition-signers and well represented in various other petitions about intolerance in India. Focusing their radical aspirations

on India, they tend to remain silent about the depredations, home and abroad, of their adopted countries, which would rapidly restrict their career ambitions. For them, a BJP Government represents all that they have been taught to despise about India and its traditions. Such a Government is presumptively guilty and, as the Prime Minister knows all too well, the mud of guilt continues to be thrown well after exoneration by the courts. The Western framework for studying and teaching about India performs another role too.

As SN Balagangadhara and Jakob de Roover have suggested, terrorism is a crime distinguished by its transubstantiation into a morally exemplary set of supererogatory actions. Thus, although it is a crime, ideology can present it as justifiable to one or other moral community. Ideology is what enables the use of theories (which can be varied — theological or otherwise) for justification. In the case of terrorism, an ideology performs the role of making a crime morally justifiable. From this standpoint, the complained of statements by the JNU students can be seen as an exercise that makes acts of terror justifiable. As Balagangadhara has shown further, justification of crime as moral is rooted in the interplay of American culture, in which organised crime flourishes, and European culture, which legitimates actions through political justifications. The presence of Euro-American intellectual voices among petition signers is therefore extremely worrying. The signatories need not themselves justify terrorism; it may be enough to provide a means by which terrorism and its supporters can be seen as justified.

When globalised by extension beyond Euro-American contexts, exercises of providing moral justifications for crimes get distorted. At the same time, we already have much of the necessary equipment to justify the criminal actions of terrorists. We have the Christian-Orientalist inheritance structuring the study of India and transmitted on Indian campuses. That provides the grounds on which an avowedly 'Hindu' ruling party Government can be demonised and demolished. Underpinned by false religion, it once would have answered to the Christian-Orientalist descriptions of despotism or tyranny while, today, the same framework grounds charges of fascism, autocracy and intolerance.

Add to that the***jihadist*** teaching that appeals to Islam's intolerance of submission to a kafir ruler. Thus the seeds enabling Afzal Gurus to be lionised as ***shahid*** are already sown. We also know who will be making a harvest of death out of them.

❍

Part of Published in DailyO.in

India must stop funding traitors like Umar and Kanhaiya's studies

— R. Balashankar

The Jawaharlal Nehru University (JNU) controversy has stirred the nation's conscience. Indians are, by now, quite used to the regular provocation by Kashmiri terrorists shouting anti-India slogans in Srinagar. But when such slogans rang in the heart of Delhi, at an institution considered as one of the premier universities in the country, Indians sat up and took notice. And when the videos of Kanhaiya Kumar and Umar Khalid jointly shouting these slogans came into the public domain, public anger turned completely against the students.

Teachers of the university, in private conversations, are applauding the government action. The hashtag #ShutdownJNU has caught up, with even JNU teachers, past and present, voting in agreement.

A professor who retired recently said, "Admissions are given only to cardholders. The entrance exam is an eyewash." This is how they have converted this institution into an extreme Left centre, she said, adding that this has been especially true in the last two decades.

Another person, whose brother had taught at the university for 40 years said, "My brother said by the time he retired, he had started disliking the university. Because it was no longer academic and there was no spark of intelligence or eagerness." Another professor, Amita Singh, said on TV that these students had terrorised the campus, and several complaints had been made against them in the past.

What has riled the public further are the statistics that are being shared through WhatsApp messages and Youtube postings. A video uploaded by one Ravi J Singh on the JNU has gone viral, receiving nearly 250,000 hits and left the listeners gasping in disbelief.

And this is what he begins his post with. Hostel and mess fee: Rs 20 month. College fee for BA and MA programmes: Rs 400 a year. Medical facilities for Rs 16. Sports fee: Rs 16. The statistics come tumbling. The government of India gives a grant of Rs 256 crore a year to the JNU,

working out to an average subsidy of Rs three lakh per student. And once they secure admission, the students stay on and on, "pursuing" studies.

It is not as though the JNU has suddenly turned extreme Left and violent. Way back in 1989 when the Tiananmen Square massacre happened, a student of the JNU was in Beijing and was eyewitness to the crackdown by the Chinese army. She contacted me. I was working in 'Malayala Manorama' then. She gave her version of events, as she watched from the window of her hostel room. The report was published in the newspaper the next day. When she returned to India and her hostel a few days later, she was harassed by the communist union leaders, driven out of her room at night and forced to apologise before she could come back to the campus.

The JNU student leaders have always blocked any leader other than the leftists from addressing seminars or even delivering lectures. Dr Murli Manohar Joshi as HRD minister was among the few who "dared" to go the university. And his meeting was disrupted and protested by students.

The latest instance of hosting a memorial meet for Parliament attack convict Afzal Guru is not new either. I have in my possession a compilation of 100-odd posters notifying meetings on Kashmir, all anti-India. When Naxalites gunned down 73 CRPF personnel, there was celebration at the JNU campus.

When Indian soldiers died in Kashmir, there were victory marches. Students like Kanhaiya and leaders like CPI(M) general secretary Sitaram Yechury and D Raja of the CPI cannot distance themselves from these anti-national elements as Kanhaiya was seen standing with Umar Khalid and raising the slogans against India.

The legal luminaries and the chatterati club of Delhi are splitting their hair on what constitutes sedition. Soli Sorabjee, one of the most respected figures in the legal world, has said Kanhaiya's sloganeering did not amount to sedition.

Fali Nariman, another towering legal luminary wrote against the government action. In legal parlance, he may be right. He may even secure the bail and release of Kanhaiya in the case. But what Sorabjee is overlooking is the fact that nationalism is not a legal point. It is the spirit of the nation.

If a student, born and brought up in a remote village in Bihar is today the students' leader at a premier university in the country, it speaks of the nation's system that facilitated him to reach where he did. And when his study is being subsidised to an extent of Rs 9 lakh in three years, by the taxpaying public, the same section has a right to ask questions and get offended. It is the rights of the taxpaying public that Sorabjee should defend. Not Kanhaiya's.

Taking a strict view against alleged "anti-national slogans" raised on the campus of Jawaharlal Nehru University (JNU) on February 9, the Delhi High Court today granted six-month interim bail to JNUSU president Kanhaiya Kumar with the condition that he give an undertaking that he would not "actively or passively" participate in such an activity again.

The bench of Justice Pratibha Rani, in its order, held that "the thoughts reflected in the slogans raised by some of the students of JNU who organised and participated in that programme cannot be claimed to be protected as fundamental right to freedom of speech and expression", and that the court would "consider this as a kind of infection which needs to be controlled/cured before it becomes an epidemic".

"Whenever some infection is spread in a limb," the court said, "effort is made to cure the same by giving antibiotics orally and if that does not work, by following second line of treatment. Sometimes it may require surgical intervention also. However, if the infection results in infecting the limb to the extent that it becomes gangrene, amputation is the only treatment."

JNUSU president Kanhaiya Kumar was granted an interim bail by the Delhi High Court.

Noting that Kumar "might have introspected about the events that had taken place" during his 20-day custody, the judge held she was "inclined to provide conservative method of treatment" and granted interim bail.

Courtesy: Indian Express

मार्च फॉर नेशन

जवाहर लाल नेहरू विवि में देशद्रोह की वारदात और उनके समर्थन में देश तोड़ने वाली शक्तियों के खड़े होने के विरोध में सेव द कंट्री, मार्च फॉर नेशन पीपुल फॉर नेशन के तत्वावधान में विरोध रैली का आयोजन किया गया। जिसमें भारी संख्या में पूर्व सैनिक एवं आम लोग शामिल हुए। २१ फरवरी २०१६ को हुए मार्च फॉर नेशन की कुछ तस्वीरें।

तस्वीरें साभारः गूगल

Dr. Syama Prasad Mookerjee Research Foundation

https://web.facebook.com/spmrfoundation

https://twitter.com/spmrfoundation